विदेशी यात्रियों की नज़र में भारत

डा. परमानन्द पांचाल

विदेशी यात्रियों की नज़र में भारत

डा. परमानन्द पांचाल

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आमुख

प्राचीन काल से ही भारत विदेशी यात्रियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। भारतीय दर्शन, ज्ञान, धन सम्पदा और संस्कृति की चर्चा संसार में दूर-दूर तक फैली हुई थी। यही कारण रहा है कि हजारों वर्षों से विभिन्न देशों के यात्री यहां आते-जाते रहे हैं। कुछ ज्ञान की खोज में आए तो कुछ पर्यटन के उद्देश्य से और कुछ इस देश की सम्पदा और समृद्धि से आकर्षित होकर व्यापार के इरादे से आए। पुराने ज़माने में हमारा देश सोने की चिड़िया कहा जाता था, जिसकी प्रसिद्धि विश्व में दूर-दूर तक फैली हुई थी। इस देश के प्रति विदेशियों का आकर्षण इसी बात से सिद्ध होता है कि फाहयान, ह्वेनसांग और मार्कोपोलो जैसे साहसिक यात्री दुर्गम पर्वतों और पठारों को लांघ कर यहां पहुंचे थे।

वैसे तो इतिहास के आरम्भिक काल से ही इस देश में आने वाले यात्रियों की संख्या बहुत अधिक रही है और असंख्य पर्यटकों ने इस देश के रीति-रिवाजों, यहां की धार्मिक मान्यताओं, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियों, वेश-भूषा, धन-सम्पदा और प्राकृतिक सौंदर्य का दिल खोलकर वर्णन किया है, फिर भी यहां आने वाले यात्रियों में अधिकतर यूरोप, चीन, अरब तथा अफ्रीका के यात्री थे, जिनके लिखित वर्णन हमें प्राप्त होते हैं। यहां हम इनमें से कुछ प्रसिद्ध यात्रियों द्वारा किए गए वर्णनों का उल्लेख करेंगे। इन यात्रियों ने भारत के सम्बंध में जो विचार व्यक्त किए हैं, वे तत्कालीन भारत की एक तस्वीर पेश करते हैं। ये विवरण विभिन्न इतिहास ग्रंथों और पुस्तिकाओं में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। अतः किसी एक स्थान पर संकलित न होने के कारण सामान्य पाठकों को उनकी पूरी जानकारी नहीं हो पाती है। इस कमी की पूर्ति को दृष्टि में रखकर इस पुस्तक की रचना की गई है। फिर भी इस लघु पुस्तिका में सभी पर्यटकों का विस्तार पूर्वक विवरण देना सहज कार्य नहीं था, इसलिए कुछ प्रमुख यात्रियों के विचार ही इसमें समाविष्ट किए जा सके हैं। आशा है यह प्रयास अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सकेगा।

भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा इसे प्रकाशित करने के निर्णय से मुझे निश्चय ही बड़ा प्रोत्साहन मिला है। विभाग के निदेशक, डा. श्यामसिंह शशि तथा अन्य अधिकारियों द्वारा जो उपयोगी सहयोग मुझे मिला है, इसके लिए मैं इनका आभारी हूं।

—डा. परमानन्द पांचाल

विषय-सूची

1. यूरोप के प्राचीन यात्री 1
2. चीनी यात्री 10
3. अरब के यात्री 24
4. मध्यकाल और बाद के यूरोपीय यात्री 34
5. उपसंहार 43

यूरोप के प्राचीन यात्री

यूरोप के साथ भारत के सम्बंध बड़े प्राचीन रहे हैं। 326 ई. पू. में सिकंदर महान के भारत पर आक्रमण के बाद भारत और यूनान एक दूसरे के और निकट आए। यूरोप-वासी इस देश की आश्चर्यजनक समृद्धि से अत्यधिक प्रभावित हुए। इस प्रकार यूरोप से यात्रियों का आना-जाना यहां आरम्भ हो गया।

मैगस्थनीज

यूरोप से आने वाला ऐसा पहला यात्री मैगस्थनीज था, जिसके कुछ लिखित वर्णन हमें प्राप्त होते हैं। सिकंदर जब भारत से वापस चला गया तो चन्द्रगुप्त मौर्य ने उन क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया, जिन्हें सिकंदर ने जीता था। किन्तु सिकंदर के सेनापति सैल्युकस निकेटर ने उसके मरने के बाद उन प्रदेशों को फिर से हासिल करने के लिए ई.पू. 309 में चन्द्रगुप्त पर आक्रमण किया। लेकिन उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा और चन्द्रगुप्त के साथ संधि करनी पड़ी। उसने चन्द्रगुप्त के साथ वैवाहिक सम्बंध ही स्थापित नहीं किए, बल्कि मैगस्थनीज को अपना राजदूत बनाकर उसके दरबार में भी भेजा।

मैगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी पाटलीपुत्र (वर्तमान पटना) में कई वर्षों तक रहा। उसने भारत के लोगों के बारे में अनेक रोचक बातें अपनी पुस्तक 'इंडिका' में लिखी हैं। यह पुस्तक पूर्ण रूप में आज उपलब्ध नहीं हैं। इसके विभिन्न उद्धरण ही इधर-उधर प्राप्त हुए हैं, जिन्हें जोड़ कर ही उसके वर्णन की एक तसवीर बनाई जा सकती है। उसके वर्णनों में कुछ बातें ऐसी अवश्य हैं, जो मनगढ़ंत प्रतीत होती हैं और वास्तविकता से मेल नहीं खाती। ऐसा लगता है कि उसने बहुत कुछ लोगों की सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करके ही इन्हें लिखा है। फिर भी, उसने चन्द्रगुप्त मौर्य के सैनिक और नागरिक प्रशासन के सम्बंध में जो कुछ लिखा है, वह उसका आंखों देखा वर्णन है, जिसकी पुष्टि कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी हो जाती है।

उसके अनुसार, भारत एक विशाल देश है, जहां ऊंचे-ऊंचे पर्वत हैं और जिनमें फलों के असंख्य वृक्ष हैं। इनसे लकड़ी प्राप्त होती है। नदियों से यहां की भूमि उर्वरा है। भारतीय लोग मुख्यतः दो फसलें उगाते हैं। सर्दियों में गेहूं, जौ और दालें तथा बरसात में धान, पटसन, तिल और बाजरा आदि। गन्ने की खेती से वह बहुत ही आश्चर्यचकित

मैगस्थनीज

था। गन्ने के गुड़ को देखकर उसने आश्चर्य में लिखा है कि "यहां बिना शहद की मक्खियों के भी शहद तैयार होता है।" गन्ने के मीठे रस के सम्बंध में वह लिखता है कि ये पौधे मिट्टी से पानी को सोख लेते हैं, जिसे सूर्य की गर्मी से पकाया जाता है और इसी से यह मीठा रस तैयार होता है।

दूसरा आश्चर्यजनक पौधा उसे कपास का लगा। वह लिखता है कि भारत में इन पौधों से वनस्पति-ऊन तैयार होती है, जिसे मकदूनिया में घोड़े की ज़ीन के लिए गद्दी के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। यहां कीमती मसाले पैदा होते हैं और विष का उत्पादन भी होता है। उसने यहां के विशाल बरगद के पेड़ों का भी उल्लेख किया है। वह लिखता है कि पांच आदमी मिलकर भी इनके तनो को नहीं घेर सकते। उसने एक ऐसे बरगद का भी वर्णन किया है, जिसकी छाया में चार सौ से भी अधिक घुड़सवार कड़ी धूप में विश्राम कर सकते थे। पाटलीपुत्र में वह लम्बे समय तक रहा था। वह इस देश की 58 नदियों का उल्लेख करता है। मैगस्थनीज लिखता है कि नदियां बहुत बड़ी हैं और जहाज़रानी के काम भी आती हैं। यहां की सिंधु और गंगा नदी तो मिस्र की नील और स्केथियन की इस्तर से भी बड़ी हैं। पाटलीपुत्र के अपने अनुभव के आधार पर वह कहता है कि भारत में कभी अकाल नहीं पड़ता, क्योंकि भारतीय लोग ऐसी आपदा से बचने के लिए पहले से ही उपाय कर लेते हैं। किसानों को समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त है। युद्ध के समय में भी उनके काम में कोई बाधा नहीं आने दी जाती है और इससे वे निःसंकोच होकर अपना काम करते रहते हैं। इस तरह भूमि की उपज पर कोई असर नहीं पड़ता।

भारत में सोने की खानें हैं। वहां रत्न भी बहुतायत से मिलते हैं। पश्चिमी देशों में यहां के मोतियों की बड़ी मांग है। सोना, चांदी, तांबा, टिन, लोहा भी भारी मात्रा में मिलता है, जो आभूषण और बर्तन आदि बनाने के काम आता है। लोहे से हथियार भी बनाए जाते हैं। एक विचित्र प्रथा का उल्लेख करते हुए वह कहता है कि यहां सोना खोदने वाली चींटियां होती हैं, जो सोना निकालती हैं। वे गढ्ढे खोद-खोदकर सोने का बुरादा बाहर निकालती रहती हैं, जिन्हें लोग चोरी-छिपे बटोर कर ले जाते हैं। उसके अनुसार, सोना दर्दिस्तान (कश्मीर) से निकलता है।

यूनानियों का ध्यान आकर्षित करने वाला, इस देश का विशालकाय हाथी था, जिसे उन्होंने पहली बार देखा था। वे आकार और प्रकार में इसकी तुलना अपने यहां के किसी भी पशु से नहीं कर सके। मैगस्थनीज लिखता है कि हाथी की आयु मनुष्य के बराबर और कभी-कभी दो सौ वर्ष से भी अधिक की होती है। हाथी राजा की सम्पत्ति होता है और कोई व्यक्ति इसे निजी तौर पर नहीं रख सकता। वह हाथी पकड़ने की विधि का भी उल्लेख करता है। मैगस्थनीज़ ने भारत में पाले जाने वाले घोड़ों का भी

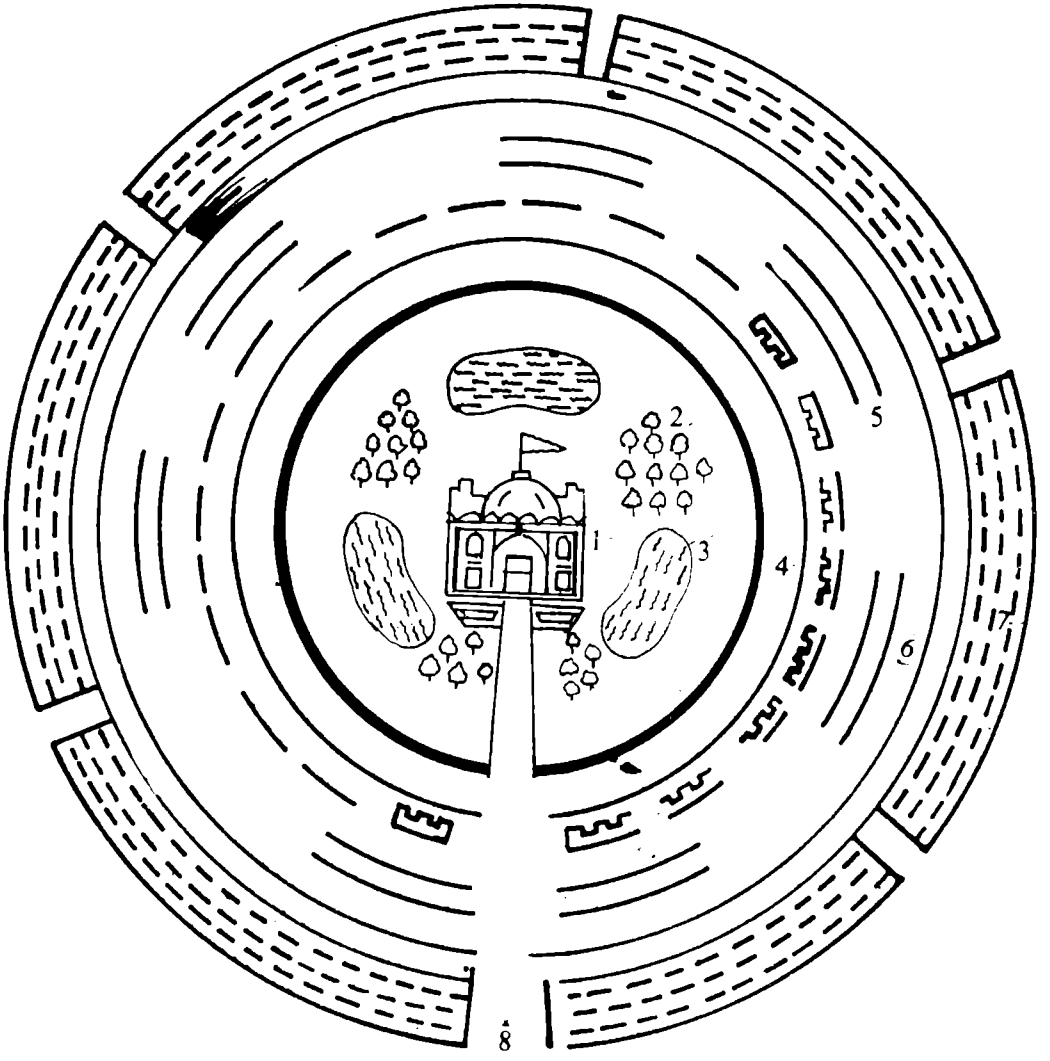

पाटलीपुत्र नगर

1. महल
2. बाग
3. तालाब
4. बाजार व गलियां
5. नागरिकों के मकान
6. लकड़ी की दीवार
7. पानी की खाई
8. नगर का मुख्य द्वार

दासता: भारत में दास प्रथा का नाम तक नहीं था। सब व्यक्ति स्वतंत्र थे और कोई भी किसी का दास नहीं था। भारतीय किसी को दास नहीं मानते थे, चाहे वह देशी हो या विदेशी।

विवाह प्रथा: समाज में बहु-पत्नी प्रथा थी। कभी-कभी बैलों की जोड़ी के बदले भी विवाह हो जाते थे। सती प्रथा का प्रचलन भी था। लोगों में साधारणतया मालिश कराने का रिवाज था। मैगस्थनीज ने आबनूस की लकड़ी के बेलन से तेल की मालिश का भी उल्लेख किया है। यहां का मुख्य धर्म वैदिक था। लोग भागवत में आस्था अवश्य रखते थे, किन्तु वे कट्टर नहीं थे।

पाटलीपुत्र का वर्णन: मैगस्थनीज़ ने पाटलीपुत्र नगर का बड़ा रोचक वर्णन किया है। यह नगर उस समय साढ़े नौ मील लम्बा और लगभग पौने दो मील चौड़ा था, जो सोन और गंगा नदियों के संगम पर स्थित थां। इसके चारों ओर छह सौ फुट से अधिक चौड़ी और 45 फुट गहरी खाई थी। शहर के चारों ओर जो दीवार थी, उसमें 570 बुर्जियां और 64 दरवाज़े थे।

चन्द्रगुप्त का महल बड़ा वैभवशाली था, जो एक बड़े बाग में लकड़ी का बना हुआ था। उसमें सुनहरे खम्बे थे, जिन पर चांदी से नक्काशी की हुई थी और कई तालाब बनाए गए थे। मैगस्थनीज़ लिखता है कि यह महल सूसा और एकबतना के महलों से भी अधिक सुंदर है। वह यह भी लिखता है कि राजा केवल चार अवसरों पर अपने महल से बाहर जाता था। युद्ध के लिए, यज्ञ के लिए और न्याय तथा शिकार खेलने के लिए। उसे मेढ़ों, सांड़ों, हाथियों और गैंडों के युद्ध पसंद थे। बैलों की दौड़ों पर लोग खूब बाज़ी लगाते थे।

नागरिक शासन: नगरों के शासन को नागरिक शासन कहा जाता था। मैगस्थनीज ने पाटलीपुत्र की शासन व्यवस्था का भी वर्णन किया है। वह लिखता है कि नगरपालिका में 30 सदस्य थे। वे पांच-पांच सदस्यों की छह समितियों में बंटे हुए थे। पहली समिति शिल्प-कलाओं की देखभाल करती थी। दूसरी विदेशियों की, तीसरी जन्म-मरण के आंकड़े रखती थी और चौथी उद्योग और व्यापार का नियंत्रण करती थी तथा माप-तोल के पैमानों और बाटों की देखभाल करती थी। पांचवी समिति यह देखती थी कि वस्तुओं के बनाने वाले नई-पुरानी वस्तुएं मिलाकर तो नहीं बेचते तथा छठी समिति बिक्री-कर वसूलने का प्रबंध करती थी।

सेना-प्रबंध: मैगस्थनीज़ लिखता है कि पाटलीपुत्र का राजा बड़ा शक्तिशाली है। उसके पास 9,000 हाथी, 30,000 घोड़े, 80,000 रथ, 60,000 पैदल सिपाही हैं। तीन अधिकारी सेना का प्रबंध करते थे। सेना के छह विभाग थे:—

1. अन्न सेना
2. पैदल सेना
3. अश्वारोही
4. रथ
5. हाथी
6. परिवहन तथा रसद विभाग।

इसमें मजदूर भी होते थे। युद्ध के समय सारा समाज और देश युद्ध में नहीं फंस जाता था। किसानों को बिना किसी बाधा के खेती करने दिया जाता था। भाग्य का फैसला आमने-सामने की लड़ाई से होता था। मैगस्थनीज़ यहां की अनेक जनजातियों और कबीलों का वर्णन भी करता है। वह लिखता है कि गंगा के दक्षिण भाग के लोग काले रंग के हैं, किन्तु सिंधु की ओर आते-आते साफ रंग के लोग दिखाई देते हैं।

इस प्रकार मैगस्थनीज़ के इन इधर-उधर बिखरे वर्णनों से तत्कालीन भारतीय समाज का एक चित्र हमारे सामने आ जाता है।

अन्य यूरोपीय यात्री

मैगस्थनीज़ के अलावा और भी कई यूनानी और यूरोपीय यात्री उस काल में भारत आए थे, जिन्होंने भारत की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का वर्णन किया है। दिमाकोस भारत के बिन्दुसार (300-273 ई. पू.) के राज्य काल में राजदूत के रूप में भारत आया था। उसने भी तत्कालीन भारत का वर्णन किया है।

पीरो नामक एक दार्शनिक सिकंदर के बाद आया था। उसकी मृत्यु 275 ई. पू. में हुई। इस वर्ष से पहले ही वह इस देश के विषय में लिख चुका था। पीरो उस भारतीय दार्शनिक से बहुत प्रभावित हुआ था, जिसने ग्रीक दार्शनिक अनेकसार खोस की भर्त्सना इन शब्दों में की थी, 'दूसरों को सद्गुण सिखाने का तुम्हारा प्रयत्न कोरा दम्भ है और यह दम्भ तब तक बना रहेगा जब तक तुम राजाओं और उनके महलों की शरण जाते रहोगे।'

एक ग्रीक-मिस्री नाविक पैरीप्लस ने 70 ई. में हिन्द महासागर में अपनी व्यापार सम्बंधी यात्रा का वर्णन किया है। अपनी पुस्तक में उसने भारत के तटीय प्रदेश में व्यापार के अपने अनुभव लिखते हुए कहा है कि यहां बड़े-बड़े बंदरगाह हैं, जिनसे विदेशी व्यापार होता है। बड़े-बड़े जहाजों से सामान लाया और ले-जाया जाता है। भारत से मुख्यतः काली मिर्च, गर्म मसाले, मोती, कीमती हीरे, मलमल, हाथी-दांत का

सामान, कछुवे की खाल, निर्यात होती है और कपड़ा, शीशे के बर्तन, चांदी, सोना, तांबा और मूंगे का आयात होता है।

प्राचीन काल के इन यूरोपीय यात्रियों के अलावा मध्य काल में भी ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन, हालैंड, रोम और रूस आदि देशों से अनेक यात्री यहां आए थे, जिनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया गया है।

चीनी यात्री

फाह्यान

फाह्यान सबसे पहला चीनी यात्री था, जिसने भारत की यात्रा करने के बाद यहां की सामाजिक व्यवस्था और लोगों के रहन-सहन तथा प्रशासन के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत में आया था। फाह्यान एक बौद्ध भिक्षु था, जो बौद्ध धर्म-ग्रंथों की खोज और उनका संग्रह करने के लिए भारत आया था। उसने 405 ईसवी से 411 ईसवी तक गुप्त-साम्राज्य में बौद्ध धर्म से सम्बंधित स्थानों और मठों की तीर्थ यात्रा की थी।

फाह्यान 399 ईसवी में चांग-अन से, जिसे आजकल सियान-फू कहा जाता है, भारत के लिए रवाना हुआ। वह सारे मध्य एशिया, गोवी के रेगिस्तान और हिन्दुकुश पर्वत को पार करता हुआ छह वर्षों में भारत पहुंचा। जब वह घर से चला तो उसके साथ पांच अन्य भिक्षुक भी रवाना हुए थे, किन्तु दुर्गम पहाड़ों और बीहड़ जंगलों में कठिन परिस्थितियों के कारण उनमें से दो भिक्षुक वापस चले गए और दो का रास्ते में ही देहांत हो गया। एक भिक्षुक स्थायी रूप से भारत में ही बस गया और अपने देश चीन वापस नहीं गया। फाह्यान ने छह वर्ष तक भारत में रहकर संस्कृत भाषा का अध्ययन किया ताकि वह बहुमूल्य सूत्रों की प्रति तैयार कर सके। उसका मुख्य उद्देश्य प्रसिद्ध बौद्ध धर्म-ग्रंथ 'विनय-पिटक' का प्रमाणिक पाठ प्राप्त करना था। उसने बुद्ध से सम्बंधित पवित्र चित्रों की ड्रांइग भी तैयार की। फाह्यान खोतान से होता हुआ पामीर के पठार को पार करके कश्मीर घाटी से गुजरता हुआ तक्षशिला, गंधार और पेशावर की यात्रा करता हुआ पाटलीपुत्र पहुंचा।

कश्मीर में स्कारदों नामक स्थान पर राजा ने 'पंचरिषद' नामक सम्मेलन का आयोजन किया। यह सम्मेलन पांच वर्ष में एक बार होता था। यहां के राजा ने भिक्षुकों को अनेक उपहार दिए। गंधार में फाह्यान ने एक शिला पर महात्मा बुद्ध के चरण-चिन्ह देखे। पुरुषपुर, अर्थात् पेशावर में उसने 'कनिष्क' द्वारा बनवाए गए विशाल स्तूप को भी देखा। उसने महात्मा बुद्ध के भिक्षा-पात्र और चंदन की लकड़ी से बनी उनकी एक छड़ी भी देखी।

वह पाटलीपुत्र में तीन वर्ष तक रहा। यहां से वह नालंदा और राजगृह होता हुआ बोध-गया पहुंचा। वहां से दुबारा पाटलीपुत्र और बनारस गया। बनारस से पुनः

पाटलीपुत्र होता हुआ चम्पा पहुंचा। इसके बाद वह बंगाल के ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) बंदरगाह पर पहुंचा, जहां उसने दो वर्ष बिताए। इस बंदरगाह से वह व्यापारी जहाज में बैठकर गंगा के डेल्टे से होता हुआ श्रीलंका गया। इस यात्रा में उसे चौदह दिन लगे और वहां वह दो वर्ष तक रहा। वह लिखता है कि गंगा की घाटी बहुत ही सुंदर एवं समृद्ध है तथा वहां की जलवायु में गर्मी व सर्दी का सुहावना मिश्रण है। श्रीलंका से कुछ बौद्ध ग्रंथों की प्रतियां लेकर फाह्यान जावा चला गया। जावा में ब्राह्मण धर्म बहुत लोकप्रिय था और बौद्ध धर्म की दशा ठीक नहीं थी। इस प्रकार छह वर्ष की यात्रा के पश्चात् वह 414 ईसवी में स्वदेश चीन लौट गया। लौटते समय उसे अपनी समुद्री यात्रा में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिसका उसने विशद वर्णन किया है। वह रास्ते में भयंकर समुद्री तूफान में घिर गया। जहाज में छेद हो जाने की वजह से पानी अंदर आने लगा, जिससे जहाज के डूब जाने की आशंका हो गई। यात्रियों ने अपना भारी सामान घबराकर समुद्र में फेंक दिया। फाह्यान को भी मजबूरी में अपनी सुराही और कुछ अन्य वस्तुएं फेंकनी पड़ीं।

फाह्यान ने यद्यपि भगवान बुद्ध से सम्बंधित पवित्र स्थानों का ही वर्णन किया है, फिर भी इनसे पांचवी सदी के भारत के जन-जीवन पर काफी प्रकाश पड़ता है।

फाह्यान ने अपने विवरण में राजा के नाम का उल्लेख नहीं किया, किन्तु उसने तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। वह लिखता है कि लोग आमतौर पर खुशहाल थे। उनपर कहीं भी आने-जाने की कोई पाबंदी नहीं थी, जो जहां जाना चाहता था, जा सकता था और जो जहां रहना चाहता था, रह सकता था। कर बहुत कम थे। जो किसान शाही भूमि को जोतते थे, उन्हें अपनी उपज का एक अंश लगान के रूप में देना पड़ता था। राजा के अंगरक्षकों को निश्चित वेतन मिलता था। न्याय सबके लिए सुलभ था। कोड़ों की सजा बहुत कम दी जाती थी। मृत्यु-दण्ड किसी को भी नहीं दिया जाता था। अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था। लगातार राजद्रोह करने वाले अपराधी का दायां हाथ काट दिया जाता था।

वह लिखता है कि भारतीय लोग बहुत ही सात्विक भोजन करते हैं। सारे देश में कोई भी व्यक्ति किसी जीवित प्राणी को नहीं मारता था, मदिरा पान नहीं किया जाता था। प्याज या लहसुन का प्रयोग नहीं होता था। वे सूअर या मुर्गियां नहीं पालते थे। वह लिखता है कि बाजार में मांस विक्रेताओं की दुकानें या मदिरालय नहीं होते थे और न ही कोई पशु बेचता था। केवल चांडाल लोग ही आखेट करते थे और वे मांसाहारी होते थे। किन्तु वे नगर से बाहर रहते थे। चांडालों के बाहर रहने का कारण उनका भ्रष्ट आचार-व्यवहार और गंदा रहन-सहन है। जब कभी वे बाजार या नगर में आते तो अपने आने की सूचना लकड़ी बजा-बजाकर देते थे। यही 'अछूत' प्रथा थी, जो उस

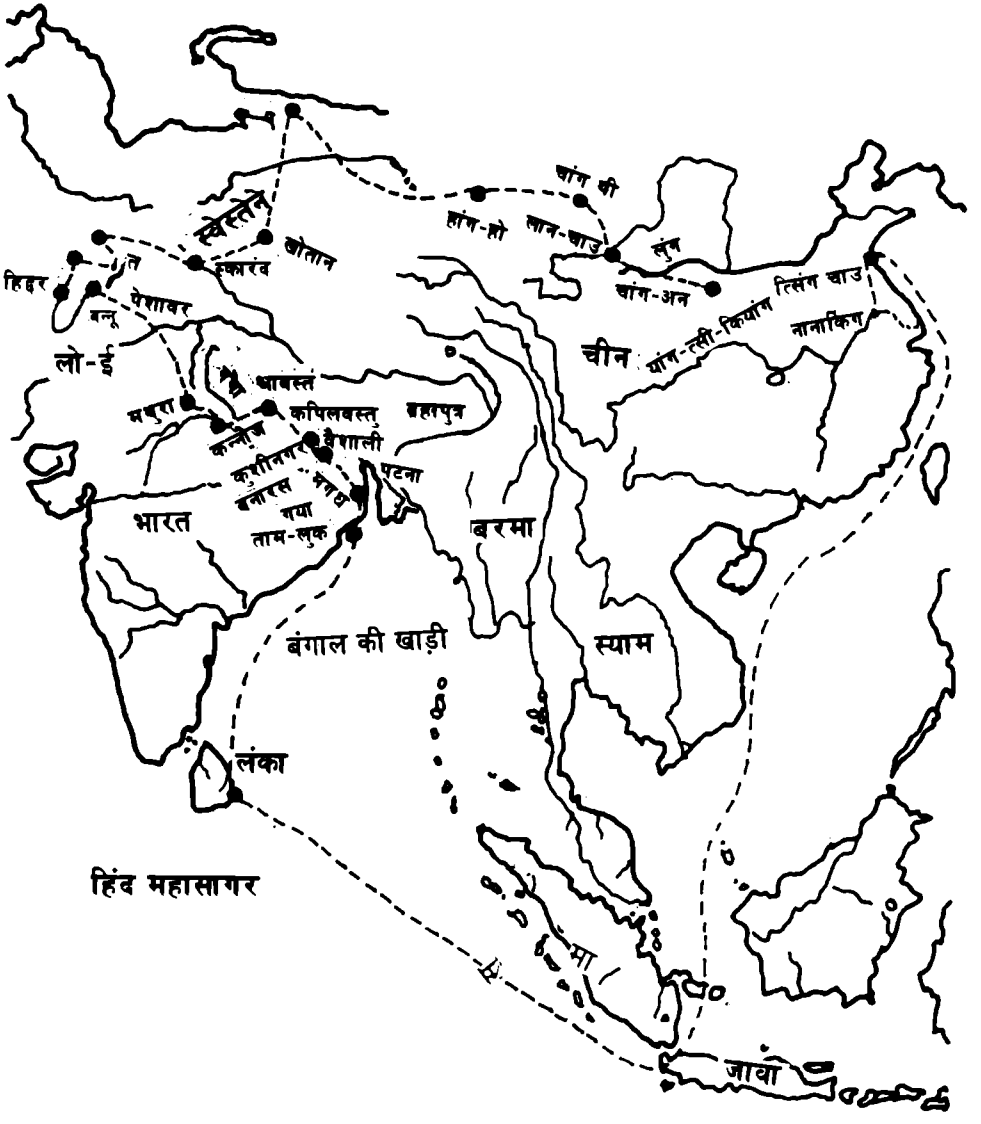

फाह्यान की यात्रा का एक पुराना मानचित्र

समय प्रचलित थी। मांस विक्रेताओं की दुकानें और मदिरालय न होने की वजह से ही पता चलता है कि भारतीय लोग स्वभाव से ही अहिंसावादी हैं और अहिंसा की जड़ें इस देश में बहुत गहरी हैं। इसी से उनके निरामिष भोजन की आदतें भी बनी हैं।

फाह्यान ने देखा कि भारत में, विशेष तौर पर गंधार और पंजाब में, बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय था। उसने हीनयान और महायान, दोनों ही सम्प्रदायों के सैंकड़ों बौद्ध मठों के दर्शन किए और वे हजारों भिक्षुकों से मिले। पंजाब में बहुत से मठ थे और उनमें लगभग 10,000 भिक्षुक रहते थे। मथुरा में बीस मठ थे, जिनमें तीन हजार भिक्षुक रहते थे। उसे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि यहां वर्ष में एक बार बौद्ध धर्म के सिद्धांतों पर चर्चा के लिए एक विशाल सभा का आयोजन होता है। ऐसे अवसरों पर राजा और ब्राह्मण तक भिक्षुकों का आदर-सत्कार करते हैं और उन्हें भेंट-स्वरूप दान देते हैं। उन्हें दान में भूमि और गांव तक दे देते हैं जिससे कि वे मठों पर होने वाले खर्च को पूरा कर सकें। उसने अनेक मठों की यात्रा की। जहां कहीं भी वह जाता, लोग उसके सम्मान में उठ खड़े होते। लोग कमण्डल, भिक्षा पात्र उससे ले लेते और उसे अपने चरण धोने के लिए जल देते और शरीर पर तेल की मालिश करते। यदि भोजन में देर हो जाती तो उसे नियमानुसार शर्बत आदि पीने को देते तथा विश्राम करने देते, क्योंकि भिक्षुकों को केवल एक बार ही भोजन करने का नियम था।

वह लिखता है कि महात्मा बुद्ध के अपने जन्म क्षेत्र मगध राज्य में गांव और नगर बड़े-बड़े हैं। लोग धनी और विनोदप्रिय हैं। फाह्यान एक विशाल वार्षिक रथ-यात्रा के उत्सव का भी उल्लेख करता है, जिसमें चार पहियों वाले पांच रथों के ऊपर चारों कोनों पर बुद्ध की प्रतिमाएं लगाई जाती हैं। इस अवसर पर सड़कों पर भारी भीड़ होती है। लोग नाचते-गाते, कलाबाजियां करते हुए अनेक करतब दिखाते हैं और लोगों का मनोरंजन करते हैं। चारों ओर से फूलों की वर्षा की जाती है और रात को दीप जलाकर प्रकाश किया जाता है। फाह्यान मगध से इतना मुग्ध था कि उसने अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा कि यदि मुझे भविष्य में बौद्ध के रूप में जन्म लेना पड़े तो मैं मगध में ही जन्म लेना चाहूंगा, पूर्व के देशों में नहीं, जहां श्रमण लोगों की भारी उपेक्षा की जाती है और उनका कोई आदर नहीं होता। मगध में लोग धनी ही नहीं, सहृदय भी हैं और अपने पड़ोसियों के साथ सद्भावना से रहते हैं।

फाह्यान जिन-जिन महत्वपूर्ण नगरों में गया, वहां उसने देखा कि धनी लोगों द्वारा धर्मार्थ औषधालय स्थापित किए गए थे। उनमें निर्धन और असहाय रोगी, यतीम विधवाएं, लंगड़े-लूले लोग अपनी चिकित्सा निःशुल्क करा सकते थे। उन्हें मुफ्त भोजन और दवाइयां भी दी जाती थीं। इलाज के बाद वे अपने घरों को लौट जाते थे। महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस समय फाह्यान ने भारत में निःशुल्क चिकित्सालयों का

उल्लेख किया है, उसके 500 वर्ष बाद तक भी यूरोप में निःशुल्क चिकित्सालयों का नाम तक भी नहीं था।

फाह्यान को यह देख कर और भी आश्चर्य हुआ कि यहां पशु-पक्षियों के लिए भी चिकित्सालय हैं। सम्राट अशोक से यह प्रथा चली थी और आज भी बौद्धों और जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा ऐसे अस्पतालों की व्यवस्था की जाती है। उल्लेखनीय है कि दिल्ली में लाल क़िले के सामने आज भी पक्षियों का एक निःशुल्क अस्पताल है।

यात्रियों के लिए सड़कों के पास ही धर्मशालाएं होती थीं, जहां भोजन और ठहरने की मुफ्त व्यवस्था थी। फाह्यान लिखता है कि इस प्रकार के धर्मार्थ कार्यों में बौद्ध ही नहीं, अन्य सम्प्रदायों के लोग भी सहायता करते हैं। जब वह प्राचीन राजधानी पाटलीपुत्र पहुंचा तो सम्राट अशोक के पुराने महल को देखकर दंग रह गया। वह लिखता है कि अशोक के महल में कई बड़े कमरे थे और वह इतना सुंदर तथा आकर्षक था कि मानों उसका निर्माण देवताओं ने स्वयं अपने हाथों से किया हो, क्योंकि ऐसा कार्य मनुष्य के बूते से बाहर है। लगता है कि देवदूतों ने ही उसके लिए भारी-भारी पत्थर इकट्ठे करके उन्हें युक्तिपूर्ण ढंग से जोड़कर ये भव्य भवन बनाए हों और पत्थरों पर सुंदर खुदाई और पच्चीकारी की हो। फाह्यान ने एक भव्य भवन कपोत विहार का भी उल्लेख किया है। यह प्राचीन भारत की स्थापत्य कला का एक सुंदर नमूना है। इस विहार में पांच मंजिलें थीं। पहली मंजिल का आकार हाथी जैसा और दूसरी का सिंह जैसा, तीसरी का घोड़े जैसा, चौथी का बैल जैसा और पांचवी मंजिल का आकार कपोत जैसा था। इस सब में कुल मिलाकर 1500 भवन थे तथा सबसे ऊपर एक झरना था, जिसका पानी सब मंजिलों में पहुंचता था।

फाह्यान ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त यद्यपि हिन्दू धर्म का अनुयायी था, किन्तु उसके साम्राज्य में बौद्ध धर्म भी पूरी तरह पुष्पित और पल्लवित हो रहा था। बौद्धों के प्रति किसी भी प्रकार के द्वेष या भेदभाव की भावना नहीं थी। वहां हिन्दू देवी-देवताओं की भी पूजा होती थी। फाह्यान ने कुछ विचित्र किन्तु रोचक प्रथाओं का भी उल्लेख किया है। वह लिखता है कि यहा एक प्रकार के नाग की पूजा की जाती है और उसे दूध पिलाया जाता है।

फाह्यान मथुरा से पूर्व की दिशा में यात्रा करता हुआ कपिलवस्तु की ओर आया। उसने देखा कि बुद्ध की इस प्राचीन भूमि में विभिन्न सम्प्रदायों की 96 संस्थाएं स्थापित हो गई थीं और बुद्ध के पास छह-सात सौ भिक्षुक रहते थे। फाह्यान यह देखकर बड़ा निराश हुआ कि श्रावस्ती जो कौसल की राजधानी थी, अब वीरान पड़ी है और केवल 200 परिवार ही वहां रहते हैं। कुशी नगर में, जहां बुद्ध ने प्राण त्याग कर महा निर्वाण प्राप्त किया था, थोड़े से लोग रहते हैं।

पाटलीपुत्र में उसे विनय पिटक अर्थात् बुद्ध द्वारा निर्धारित नियम-पुस्तिका की संस्कृत प्रति को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह इसी की तलाश में लम्बी यात्रा तय करके भारत आया था। कठिनाई यह थी इसे धर्म गुरुओं द्वारा मौखिक रूप में ही याद रखा जाता था। इसकी लिखित प्रतियां बहुत कम थीं। कागज का जो अविष्कार, 105 ई में त्साई लुन द्वारा चीन में हुआ था, वह अभी 5वीं सदी तक भारत में नहीं पहुंचा था। यहां अभी भी भोजपत्रों और ताड़ पत्रों पर ही लिखा जाता था। फाह्यान के सामने इसकी प्रति तैयार करने में यही कठिनाई थी।

फाह्यान की इस यात्रा से भारत और चीन के सांस्कृतिक सम्बंधों को एक दृढ़ आधार मिला और चीन में बौद्ध धर्म के प्रति लोगों की आस्था बढ़ी और उन्हें भारत के लोगों के बारे में पहली बार सही-सही जानकारी मिली।

ह्वेनसांग

चीनी यात्री फाह्यान की भारत यात्रा के लगभग सवा दो सौ वर्ष के बाद एक अन्य चीनी यात्री ह्वेनसांग भी भारत की यात्रा पर आया, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रमाणिक बौद्ध धर्म-ग्रंथों की खोज करना था। ह्वेनसांग, युवान च्वांग के नाम से भी जाना जाता है। वह एक सुंदर व्यक्तित्व वाला सुशिक्षित और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। बचपन से ही वह धार्मिक प्रवृत्ति का था। इसलिए वह भिक्षुक बनकर बौद्ध धर्म का गहराई से अध्ययन करना चाहता था। इसे बौद्ध धर्म के सम्बंध में कुछ शंकाएं थीं, जिनका समाधान वह स्वयं खोजना चाहता था। उसने सोचा, 'यदि मैं भारत जाऊं तो मैं मूल ग्रंथों को पढ़कर शंकाओं का समाधान कर सकता हूं। अतः वह 26 वर्ष की युवावस्था में, 629 ईसवी में चीन से रवाना हुआ और बिना सरकारी अनुमति के ही वह चुपके से चीन से निकल पड़ा।

भूख और प्यास को सहन करता हुआ, मध्य एशिया के पर्वतों, रेगिस्तानों और अनजान मार्गों को पार करता हुआ ह्वेनसांग अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ता गया। वह बीच में रास्ता भटक गया। उसका घोड़ा भी थककर निर्बल अवस्था में गिर पड़ा। उसने हताश होकर बोधिसत्व से प्रार्थना की कि "मैं अपनी इस यात्रा से न धन और न ऐश्वर्य और न ही प्रसिद्धि पाना चाहता हूं। मेरा मुख्य उद्देश्य तो केवल उच्च ज्ञान और सत्य की खोज करना है।" कहते हैं उसकी प्रार्थना स्वीकार हुई और वह नई शक्ति तथा स्फूर्ति के साथ अपने मार्ग पर आगे बढ़ चला।

वह ताशकंद और समरकंद होता हुआ 630 ईसवी में गंधार पहुंचा। अफगानिस्तान की भाषा को समझने के लिए तुर्की के राजा ने उसके साथ एक दुभाषिया भी भेज दिया था। पेशावर पहुंचने पर उसे पता चला कि वहां ईसा-पूर्व की चौथी सदी में व्याकरण के प्रसिद्ध आचार्य पाणिनी रहा करते थे, जिन्होंने संस्कृत भाषा की प्रसिद्ध

ह्वेनसांग का एक चित्र

व्याकरण अष्टाध्यायी की रचना की थी। इसलिए उसने उनकी जन्म-भूमि स्वात की यात्रा करने का भी निश्चय किया। वह सिंधु नदी को पार करके कश्मीर पहुंचा, जो विद्या का एक महान केन्द्र था। कश्मीर पहुंचने पर वहां का राजा स्वयं उसका स्वागत करने के लिए उपस्थित हुआ। सड़कों को फूलों से सजाया गया। वहां रहकर उसने एक महायान विद्वान से संस्कृत भाषा सीखी और दर्शनशास्त्र का विशेष अध्ययन किया। राजा को जब यह पता चला कि ह्वेनसांग बौद्ध धर्म-ग्रंथों की प्रतियां तैयार करके ले जाना चाहता है तो राजा ने उसे 26 धर्मशास्त्रियों और लिपिकों की सेवाएं इस कार्य के लिए प्रदान कीं।

कश्मीर में दो वर्ष रहने के बाद उसने नालंदा की ओर प्रस्थान किया। कुल्लू और जालंधर से होते हुए उसने हर्ष के राज्य में प्रवेश किया। हर्षवर्धन उस समय उत्तर भारत का एक शक्तिशाली शासक था। वहां से वह मथुरा और कन्नौज होता हुआ प्रयाग की तीर्थयात्रा पर आया। रास्ते में गंगा नदी को पार करते समय उसे डाकुओं का सामना करना पड़ा। डाकू दुर्गा के उपासक थे और वे देवी को नर-बलि देते थे। वे ह्वेनसांग जैसे सुंदर व्यक्ति को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे बलि देने के लिए चुन लिया। ह्वेनसांग ने शांत भाव से डाकुओं से भगवान बुद्ध की प्रार्थना करने की अनुमति मांगी। डाकुओं ने जब यह देखा कि वह एक परदेसी और धर्मात्मा व्यक्ति है तो उन्होंने उस पर दया करके छोड़ दिया तथा उसका सब सामान लौटा दिया।

ह्वेनसांग ने भारत की इस पवित्र नदी की चर्चा करते हुए लिखा है कि गंगा में स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं। जो इस नदी में डूब जाते हैं वे भी स्वर्ग में सुख का जीवन प्राप्त करते हैं। लोग मृत व्यक्ति की अस्थियां इसमें प्रवाहित करते हैं ताकि मृत्यु उपरांत उसे सुख शांति मिल सके। इससे पता चलता है कि हमारे देश वासियों की गंगा के प्रति श्रद्धा कितनी प्राचीन है और आज भी करोड़ों हिन्दुओं में विद्यमान है।

प्रयाग से वह श्रावस्ती, कपिलवस्तु कुशीनगर, वाराणसी, सारनाथ, गया, वैशाली, पाटलीपुत्र और राजगृह आदि तीर्थस्थलों की यात्रा को गया। ये सभी स्थान बौद्ध धर्म के पवित्र स्थल माने जाते थे। वाराणसी में अधिकाशं लोग शिव के उपासक थे और ब्राह्मणों का आदर करते थे। वहां उसे बौद्ध धर्म के अनुयायी बहुत कम मिले और विभिन्न मत-मतांतरों के साधु और सन्यासी घूमते हुए दिखाई दिए। कुछ साधु बिल्कुल नंगे थे और कुछ ने अपने शरीर पर भभूत मल रखी थी। कुछ साधु हठयोगी थे और योग द्वारा निर्वाण आदि की प्राप्ति करना चाहते थे।

जब वह नालंदा के समीप पहुंचा तो 200 बौद्ध भिक्षुकों और हजारों दर्शकों ने ह्वेनसांग की अगवानी की। उसका स्वागत फूलों और झंडे-झंडियों से किया गया। जब एक जुलूस में उसे प्रसिद्ध विद्वान शीलभद्र के सामने लाया गया तो उसकी आंखों से आंसू

बह निकले और वह उन्हें रोक नहीं पाया, क्योंकि उस समय उनसे मिलने का उसका स्वप्न साकार हो रहा था। उसने शीलभद्र के निर्देशन में नालंदा में विद्यार्थियों को शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया। ह्वेनसांग ने संस्कृत में अनेक ग्रंथ लिखे। नालंदा में उसने कई विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ भी किया। इस विश्वविद्यालय में व्याकरण, शिल्प-शास्त्र, आयुर्विज्ञान, तर्क, और दर्शन की शिक्षा दी जाती थी और इसमें दूर-दूर से विद्यार्थी पढ़ने आते थे। वह नालंदा में पांच वर्ष तक रहा और उसे बार-बार राजा हर्षवर्धन की ओर से निमंत्रण मिलता रहा कि वह उनसे मिले। कामरूप (असम) से भी उसे तीन बार बुलावा आया और वह विवश होकर असम गया। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहां एक भी बौद्ध मठ नहीं था, किन्तु वह अपने वर्णन में लिखता है कि वहां के लोग अपने शासक कुमार की भांति अध्ययनशील हैं और उनकी स्मृति बहुत ही विलक्षण है। कुमार ने ह्वेनसांग से प्रभावित होकर हर्ष के दरबार के चीनी राजदूत से आग्रह किया कि यह चीनी दार्शनिक लाओ त्जू की रचना 'ताऊ-ते-चिंग' का संस्कृत में अनुवाद उपलब्ध करा दें। लाओत्जू छठीं सदी का चीन का एक प्रसिद्ध विद्वान था। इससे पता चलता है कि उस समय भारत और चीन के सांस्कृतिक सम्बंध कितने प्रगाढ़ थे।

राजा हर्षवर्धन ने कामरूप के राजा कुमार को यह संदेशा भेजा कि वह ह्वेनसांग को तुरंत उनके पास भेज दें। कुमार ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि ह्वेनसांग को तो नहीं, अपने सिर को समर्पित कर दूंगा। इस पर हर्ष ने नाराज होकर कहलवा भेजा कि 'वह अपना सिर ही भेज दें'। किन्तु कुमार ह्वेनसांग को स्वयं साथ लेकर बंगाल आया जहां हर्षवर्धन ने उसके चरण स्पर्श कर चीनी विद्वान का सत्कार किया।

अगली भेंट में हर्ष ने यह निर्णय किया कि देश के उच्च विद्वानों का एक सम्मेलन आयोजित किया जाए जिसमें सभी धार्मिक पंडित और विद्वान भाग लें। इस धार्मिक सम्मेलन का आयोजन कन्नौज में किया गया। सम्मेलन में दो राजा, हर्ष और कुमार के अलावा, हर्ष के अधीन जो 18 राजा थे, वे भी सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में एक हजार विद्वान नालंदा से आए। इसके अलावा, 3000 ब्राह्मण और जैन वहां पहले से ही उपस्थित थे। यह समारोह एक बड़े जुलूस के साथ आरम्भ हुआ। भगवान बुद्ध की सोने की प्रतिमा एक हाथी पर रखी गई। हाथी के एक ओर महाराजा हर्ष इन्द्र के रूप में अपनी राजकीय वेश-भूषा में और दूसरी ओर कुमार एक ब्राह्मण के रूप में चल रहा था। हाथी के ऊपर बहुमूल्य हीरे-मोतियों और मुक्ताओं की बौछार की गई। जुलूस की समाप्ति पर विद्वानों के महा शास्त्रार्थ का आयोजन भी किया गया। ह्वेनसांग विशेष रूप से आमंत्रित व्यक्ति के रूप में सभा में मुख्य आसन पर सुशोभित था। वह सम्मेलन पांच दिन तक चला। इसके बाद हीनयान और ब्राह्मणों में ह्वेनसांग के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हुई। हर्ष ने आदेश दिया कि यदि कोई व्यक्ति ह्वेनसांग का वध करने का

प्रयत्न करेगा तो उसको मौत के घाट उतार दिया जाएगा और यदि कोई व्यक्ति उसकी निन्दा करेगा तो उसकी जबान काट दी जाएगी।

कन्नौज के महा-सम्मेलन के बाद ह्वेनसांग ने चीन वापस जाने का निर्णय किया। किन्तु हर्ष ने उसे अपने साथ प्रयाग चलने को कहा, जहां संगम पर हर पांच साल के बाद वह दान देने के लिए एक सभा आयोजित करता था। सन् 635 ई. में हुई छठी सभा में राजा से दान लेने के लिए प्रयाग में लाखों लोग इकट्ठे हुए। हर्ष ने 110 हजार बौद्ध विद्वानों में से हरेक को 100 स्वर्ण मुद्राएं वस्त्र आदि और ब्राह्मणों तथा भिखारियों को बहुत सा धन दिया। पूरे 75 दिनों तक दान देने का कार्य चलता रहा। ह्वेनसांग को दान-स्वरूप एक हजार स्वर्ण मुद्राएं भेंट की गईं, किन्तु उसने वे स्वीकार नहीं की क्योंकि वह धन का नहीं ज्ञान का संग्रह करने भारत आया था। इस तरह से पिछले पांच वर्षों में हर्ष के राजकोष में इकट्ठा हुआ सारा धन खर्च हो गया। सब कुछ दान कर देने के बाद उसके पास शरीर ढकने के लिए भी कुछ न रहा तो उसने एक वस्त्र अपनी बहन राजश्री से लिया।

इसमें संदेह नहीं कि हर्ष के समय में इस धार्मिक संसद के प्रति लोगों में कितनी आस्था थी और वे बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि से कितने सजग थे। लोगों में सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और आदर की भावना थी: धार्मिक कट्टरता का कोई स्थान नहीं था।

ह्वेनसांग ने कन्नौज से पांच वर्ष पहले पल्लव राजाओं की राजधानी कांची की भी यात्रा की थी। उसने देखा कि वहां महायान सम्प्रदाय के अस्सी मठ, अनेक हिन्दू मंदिर और जैन मंदिर भी हैं। वह मामल्लपुरम (आज का महाबलिपुरम) से जहाज में श्रीलंका की यात्रा लिए रवाना हो रहा था, किन्तु वहां अशांति होने की वजह से वह वहां न जा सका और चालुक्य राजा पुल्केशिन-द्वितीय के राज्य में चला आया। उसने वहां के शासन का आंखों देखा हाल लिखा है। वह लिखता है कि राजा शत्रुओं के प्रति बड़ा कठोर है किन्तु साथ देने वाले वफादारों के प्रति उतना ही कृतज्ञ भी है। लोग ज्ञान का आदर करते हैं और उदार हृदय हैं। वे हिन्दू और बौद्ध, दोनों ही मतों का अध्ययन करते हैं। पुल्केशिन यद्यपि शिव भक्त था, किन्तु उसका राज्य बौद्ध मत का केन्द्र भी था। ह्वेनसांग उत्तर की ओर नासिक से मालवा और गुजरात के वल्लभी राज्य में भी गया था। इस प्रकार उसने प्रायः सारे भारतवर्ष को देखने का प्रयास किया।

ह्वेनसांग नालंदा से 643 ई. में स्वदेश के लिए रवाना हुआ। अंत में [illegible], यहां दिल विदा ली, जो एक हृदय स्पर्शी विदाई थी। उसके प्रशंसक कुमार [illegible] सबसे बड़ा आधार अंग-वस्त्र प्रदान किया। हर्ष ने उसे एक हाथी दिया और अनेक [illegible]। चित्रों तथा 657 संस्कृत भाषा की पांडुलिपियों को ले [illegible]

समाप्ति प
रूप से आमंत्रित व्यागंग के स्वागत के लिए सूर्योदय की भी प्रतीक्षा नहीं कर सका
पांच दिन तक चला। ३
उत्पन्न हुई। हर्ष ने आदेश ।५

भारत में पन्द्रह वर्ष तक रहा। उसका भारत आने का उद्देश्य था कि 'यहां से ज्ञान का जो भंडार मैंने एकत्रित किया है उसका लाभ चीन के भिक्षुक भी उठाएं।' वह नौ महीने में सिंधु नदी के पास पहुंचा। सिंधु को पार करते समय एक भयंकर तूफान आया जिसमें उसके अनेक मूल्यवान धर्म-ग्रंथ पानी की चपेट में आ गए। इसके अलावा, वह यहां से जो फूलों के बीज ले गया था, वे भी पानी में बह गए।

चीन पहुंचने पर ह्वेनसांग का जोरदार स्वागत हुआ और हजारों की संख्या में चीनी जनता उसके स्वागत के लिए उमड़ पड़ी। भीड़ ने नदी के घाट को इस तरह से घेर लिया कि नाव को तट के नजदीक टिकाने का स्थान तक न मिल सका और उसे रात नौका में ही बितानी पड़ी। राजधानी पहुंचने पर स्वयं सम्राट ने ह्वेनसांग का स्वागत किया।

चीन पहुंचकर ह्वेनसांग ने अपना शेष जीवन भारत से लाए धर्म ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद करने में लगा दिया और उसने भारत से जो ज्ञान अर्जित किया था उसका प्रसार चीन के लोगों में भी किया। इससे चीन के लोगों में भारत के प्रति आस्था बढ़ी और भारत तथा चीन में सौहार्दपूर्ण सम्बंध स्थापित करने में बड़ी सहायता मिली। इस यात्रा का एक प्रभाव यह पड़ा कि भारत से अनेक विद्वान भी चीन व तिब्बत की यात्रा पर गए, जहां उन्होंने बहुत से भारतीय ग्रंथों का चीनी और तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। चीन जाने वाले भारतीय विद्वानों में कुमारजीव, परमार्थ, शुभाकर सिंह और धर्मदेव का नाम उल्लेखनीय है।

ह्वेनसांग, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ज्ञान और सत्य की खोज में भारत आया था। उसने धार्मिक ग्रंथों के संग्रह के साथ-साथ उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का भी कुछ वर्णन किया है। वह इस देश की समृद्धि से बहुत प्रभावित हुआ। वह लिखता है कि यहां व्यापार वस्तु विनिमय द्वारा या सोने-चांदी अथवा मोतियों के माध्यम से होता है। शिक्षा के प्रति जनता में बड़ी रुचि है और व्यक्ति की शिक्षा कभी-कभी 30 वर्ष की आयु तक भी चलती है। ज्ञान के प्रति भारतीय लोगों में बड़ी जिज्ञासा रहती है, विद्वानों का सम्मान किया जाता है। विभिन्न मत-मतांतरों के लोग यहां सद्भावना से रहते हैं। भारत की यह विरासत आज भी हमें मिली है। उसके वर्णन से पता चलता है कि यहां धार्मिक कट्टरता नहीं थी और लोग धर्म के नाम पर रक्तपात नहीं करते थे। दूसरे मत के लोगों की बात को धैर्य से सुनते थे, विद्वानों में शास्त्रार्थ होते थे और जिसकी बात पर उन्हें विश्वास होता था, वे उसी मत के अनुयायी हो जाते थे। भारत की इस धार्मिक सहिष्णुता के कारण ही आज यहां संसार के प्रायः सभी धर्मों के अनुयायी मिलते हैं। विदेशी अतिथियों और विद्वानों का, यहां दिल खोलकर स्वागत किया जाता है। हमारी धर्म-निरपेक्ष नीति का यही सबसे बड़ा आधार है और यही भारत की महानता का सबसे बड़ा लक्षण है।

ईत्सिंग

चीन से भारत आने वाले यात्रियों की जिस शालीन परम्परा का प्रारम्भ फाह्यान ने किया था, उसे अपने भ्रमण और अर्जित ज्ञान से ह्वेनसांग ने और भी शालीन बना दिया था। ह्वेनसांग के भारत यात्रा विवरण, विशेषकर हर्ष सम्बंधी वर्णनों से चीन के बौद्ध बहुत प्रभावित हुए थे, जिससे उन्हें स्वयं भारत जाकर बौद्ध धर्म का अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। फलस्वरूप चीन से भारत आने वाले यात्रियों का तांता बंध गया। इन यात्रियों में प्रमुख यात्री ईत्सिंग था। वस्तुतः सातवीं सदी के उत्तरार्ध में लगभग 32 चीनी बौद्ध भिक्षुओं ने भारत की यात्रा की, जिनका जीवन-वृतांत स्वयं ईत्सिंग ने दिया है। इनमें कोरिया, तिब्बत, समरकंद और हिन्द-चीन के यात्री भी शामिल हैं। ईत्सिंग को जिस बात ने भारत जाने के लिए विशेष रूप से आकृष्ट किया था, वह था नालंदा का विश्वविद्यालय।

इत्सिंग ,फाह्यान और ह्वेनसांग की तरह थलमार्ग से न आकर जलमार्ग से भारत आया। वह ईरानी जहाज पर 671 ई. में चीन से रवाना हुआ। उसका जहाज कुछ दिनों बाद सुमात्रा पहुंचा। सुमात्रा में श्रीविजय बौद्ध ज्ञान का प्रसिद्ध केन्द्र था। ईत्सिंग यहां लगभग दो वर्ष रहा और फिर भारत के लिए चल पड़ा। वह 673 ई. में बंगाल की खाड़ी के प्रसिद्ध बंदरगाह ताम्रलिप्ति (ताम्लुक) पहुंचा। जलमार्ग से आने का कारण यह था कि मध्य एशिया का मार्ग बड़ा दुर्गम था और साथ ही वह मार्ग तिब्बती व अरबी आक्रमणों के कारण और भी भयावह हो गया था।

ईत्सिंग भारत में सन् 673 से 695 ई. तक रहा था। भारत में रहकर उसने संस्कृत भाषा, व्याकरण, साहित्य, दर्शन और चिकित्सा-शास्त्र सभी का अध्ययन किया। उसने 400 संस्कृत पुस्तकों का अध्ययन किया, जिनमें पांच लाख श्लोक थे। उसने यहां के पाठ्यक्रम का सविस्तार विवरण दिया है। अश्वघोष के सम्बंध में वह लिखता है कि वह अतीत का एक महान पंडित था और उसकी कृतियों को उस काल में भी बड़े चाव से पढ़ा जाता था। उसके विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि राजा भर्तृहरि का उसके भारत पहुंचने से केवल 40 वर्ष पूर्व ही देहांत हुआ था। ईत्सिंग लिखता है कि भर्तृहरि यद्यपि बौद्ध था किन्तु वह जीवन-भर सन्यास और गृहस्थ के बीच अटका रहा। वह सात बार भिक्षु हुआ तथा फिर सात बार गृहस्थ। ईत्सिंग ने उसके एक श्लोक का भी उल्लेख किया है, जिसमें भर्तृहरि ने कहा है कि 'उसे धिक्कार है जो सन्यास और संसार में से एक को चुनकर अपने संकल्प पर दृढ़ नहीं रहता'

ईत्सिंग ने नालंदा में रहकर केवल अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि अनेक बौद्ध ग्रंथों की प्रतिलिपियां भी चीन ले जाने के लिए तैयार कीं। वह अपने साथ लगभग चार सौ ग्रंथ चीन ले गया, जिनमें लिखे श्लोकों की कुल संख्या 50 हजार से अधिक थी।

उसने भी अन्य यात्रियों की भांति ही अनेक संस्कृत के बौद्ध ग्रंथों का चीनी में अनुवाद किया। इस कार्य को सुगम बनाने के लिए उसने संस्कृत और चीनी भाषा का एक कोश भी तैयार किया।

ईत्सिंग द्वारा वर्णित 60 बौद्ध यात्रियों की भारत यात्रा से पता चलता है कि इतनी बड़ी संख्या में मार्ग की दुर्गमता के बावजूद ये लोग भारत आए थे, जिससे दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक सम्बंध बड़े मधुर हो गए थे।

चीन के अन्य यात्री

इस प्रकार हम देखते हैं कि फाह्यान और ह्वेनसांग जैसे चीन के अनेक विद्वानों ने बौद्ध ग्रंथों की खोज में भारत की यात्राएं कीं। सातवीं सदी चीनी यात्रियों के लिए स्वर्ण युग माना जाता है। ह्वेनसांग (630 ई.) के अलावा वांग-हियो-से (643 ई.) और ईत्सिंग (673 ई.) जैसे अनेक विद्वान इस काल में भारत आए। उनके अतिरिक्त भारत आने वाले अनेक विद्वानों में प्रमुख नाम चीमोंग, सुंग-युन, वू-क-ओंग (75 ई), चे-यी (990 ई.), को-युन (1022 ई.) व ह्याई-वेन (1033 ई.) के हैं।

इनके अलावा, मध्यकाल में चीन से एक अन्य यात्री (1406 ई) में भारत आया था, जिसका नाम मोहान था। उसने बंगाल की यात्रा की और वह धन-धान्य से पूर्ण भारत के इस प्रांत को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ था। उसने यहां की तैयार वस्तुओं की भी बड़ी प्रशंसा की।

कहा जाता है कि जिन भारतीय ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया गया, उनकी संख्या लगभग 5,400 थी। इन्हीं के विवरण के लिए चीनियों ने छापेखाने का आविष्कार किया और 97 ईसवी से वहां ब्लाक प्रिंटिंग शुरु हो गई।

अरब के यात्री

अरब और भारत के सम्बंध बहुत ही प्राचीन हैं और ये सम्बंध इस्लाम धर्म के उदय होने से बहुत पहले ही स्थापित हो चुके थे। यह भी अक्षरशः सत्य है कि भारत में इस्लाम धर्म के प्रवेश से बहुत पहले ही अरब देशों के यात्रियों का भारत में आना-जाना शुरु हो गया था।

सुलेमान सौदागर

सुलेमान सौदागर को हम ऐसा पहला अरब यात्री कह सकते हैं, जिसका यात्रा-विवरण हमें प्राप्त है। वह एक व्यापारी था तथा इराक से चीन तक की समुद्री यात्रा किया करता था। समुद्री यात्रा के दौरान वह भारत के सारे समुद्र तट का चक्कर लगाता था। उसने हिन्द महासागर का नाम 'दरिया-ए-हरगंद' लिखा है। 'हरगंद' समुद्र के उस भाग को कहते थे. जो दक्षिण भारत के किनारों पर बहता है। सुलेमान कहता है कि 'यहां लगभग 1900 टापू हैं और इसपर एक स्त्री का राज्य है। इनमें अम्बर और नारियल के वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं। यहां के लोग बहुत कारीगर हैं। वे कुर्ते को दोनों आस्तीनों, दामनों और गले सहित बुन लेते हैं और इसी प्रकार जहाज भी बनाते हैं। सबसे अंतिम टापू का नाम ' सरनीदीप ' है।

सुलेमान ने भारत के समुद्र तट के चार बड़े राजाओं का उल्लेख किया गया है, जिनमें पहले राजा का नाम बल्हेरा है, जो बल्लभराय का बिगड़ा रूप है। यहां सैनिकों को वेतन दिया जाता है। राजा के सिक्के भी होते हैं और राजा अरब लोगों से बड़ा प्रेम करता है। उनके देश का नाम कुमकुम (कोंकण) है, जो समुद्र के किनारे बसा है।

सुलेमान राजा बल्हेरा के बाद जजर (गूजर) अर्थात् गुजरात के राजा का भी जिक्र करता है जिसके पास सबसे अच्छे घोड़े हैं। इसके बाद वह ताफन के राजा का उल्लेख करता है। ताफन वर्तमान औरंगाबाद और दकन के पास का क्षेत्र माना जा सकता है। चौथा 'रहमी' का राजा है, जिसके पास सबसे अधिक सेना है और सेना में 50 हजार हाथी हैं। रहमी में सबसे बढ़िया सूती कपड़े होते हैं।

सुलेमान सौदागर ने भारत के बहुत से कानूनों का भी उल्लेख किया है। उसने

बताया है कि सारे भारत में व्यभिचार का दण्ड दोनों अपराधियों का वध है और चोरी का दण्ड भी मृत्यु ही है। इसके अलावा, डाकू के लिए भी वध का दण्ड है। लोग लम्बी-लम्बी दाढ़ियां रखते हैं। वह कहता है कि मैंने तीन हाथ लम्बी दाढ़ी भी देखी है। जब कोई मरता है, तब उसके सम्बंधी आदि अपनी दाढ़ी और मूंछ मुंडवा देते हैं। हिन्दू लोग दोपहर को भोजन करने से पहले स्नान करते हैं। सुलेमान कहता है कि भारत में सब तो हैं, परंतु छुआरे का वृक्ष नहीं है और अंगूर का भी नहीं। भारत में एक ऐसा फल है (सम्भवतः आम) जो हमारे यहां (अरब में) नहीं है। भारत में जमीन पर फर्श बिछाने की प्रथा नहीं है। चीन का धर्म वास्तव में भारत से ही निकला है। वे बुद्ध की मूर्ति पूजते हैं। चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन के क्षेत्र में भारत बहुत आगे है। भारतवासियों का पहनावा यह है कि वे एक कपड़ा कमर से बांध लेते हैं और दूसरा ऊपर डाल लेते हैं। स्त्रियां और पुरुष सोने और जवाहरात के गहने पहनते हैं।

8वीं सदी ई. का यह अरब यात्री एक स्थान के बारे में लिखता है कि—"यहां जैसे कपड़े बुने जाते हैं ऐसे और कहीं नहीं बुने जाते, और ये इतने बारीक होते हैं कि पूरा कपड़ा (थान) एक अंगूठी में आ जाता है। ये कपड़े सूती होते हैं और हमने ये कपड़े स्वयं भी देखे हैं।"

इब्न हौकल (943-79 ई.)

इब्न हौकल बगदाद का एक व्यापारी था, जो 943 ईसवी में बगदाद से चलकर यूरोप, अफ्रीका और पश्चिम के विभिन्न देशों से होता हुआ भारत पहुंचा था। उसने सिंध का नक्शा तैयार किया था। यह वह पहला अरब यात्री और भूगोल लेखक है, जिसकी पुस्तक में तत्कालीन भारत की लम्बाई और चौड़ाई बताने का प्रयत्न किया गया है। इब्न हौकल कहता है कि भारत के महादेश में सिंध, कश्मीर और तिब्बत का भाग मिला हुआ है। भारत के एक ओर फारस का सागर है। उसके पश्चिम और दक्षिण में मुसलमानों के देश हैं और उत्तर में चीन है। भारत की लम्बाई बहुत अधिक है। भारत, मकरान से मंसूरा और सारे सिंध प्रांत से लेकर कन्नौज के आगे तक फैला है। आगे बढ़कर तिब्बत है और वहां तक जाने का चार महीने का रास्ता है। इस प्रकार इब्न हौकल द्वारा ही पहली बार भारत की सीमा बताने का प्रयत्न किया गया है।

उसकी यात्रा के समय दक्खन और दक्षिण-पश्चिमी भारत पर राष्ट्रकूटों का राज्य था। इब्न हौकल लिखता है कि राष्ट्रकूटों के इस राज्य में अनेक ऐसे नगर हैं, जिनमें मुस्लिम बस्तियां बस गई हैं और मुसलमानों के ऊपर वहां के राजा बड़े ही उदार और कृपालु हैं।

अरब लोग भारत में विशेष रूप से व्यापार के लिए आते थे और यहां से गर्म-मसाले, सुगंधित लकड़ियां, वस्त्र और हाथी दांत का सामान अपने देश को ले जाते

थे। इब्ने खुर्दाजबा (250 हिजरी) ने जो ईसा की 8वीं सदी के कुछ बाद भारत आया था, उन पदार्थों का उल्लेख किया है, जो यहां से अरब और इराक जाते थे। वे हैं—'सुगंधित लकड़ियां, चंदन, कपूर, लौंग, काली-मिर्च, जायफल, कबाब चीनी, नारियल, सन के कपड़े, रुई के मखमली कपड़े, तथा हाथी दांत और सरन्दीप से सब प्रकार की लाल माटी, बिल्लौर और कुरुंड जिससे जवाहरात साफ किए और चमकाए जाते हैं, गुजरात से सीसा, दक्खिन से वक्कम और सिंध से कुट, बांस और बैंत आदि।'

अरब यात्री मसऊदी ने पान का विस्तृत वर्णन किया है। यह वर्णन आज से प्रायः 900 वर्ष पहले का है। वह कहता है कि पान एक प्रकार का पत्ता होता है। जब इसको चूना और डली मिलाकर खाते हैं तब अनार के दानों की तरह दांत लाल हो जाते हैं और मुंह सुगन्धित हो जाता है। चित्त भी बहुत प्रसन्न होता है। भारत के लोग सफेद दांतों और पान न खाने वालों को पसंद नहीं करते। उस समय पान जैसा कोमल पदार्थ अरब नहीं पहुंच सकता था, लेकिन डली बराबर पहुंचती थी। मसऊदी कहता है कि 'आजकल यमन, हज्जाज और मक्के में लोग डली अधिकता से खाने लगे हैं।'

मसऊदी (303 हिं.) और बुशारी (730 हि.) दोनों ने खम्बात (काठियावाड़) के जूतों की बड़ी प्रशंसा की है, जो यहां से बन कर बाहर जाते थे। थाना (बम्बई) के कपड़े प्रसिद्ध थे।

अरब के यात्रियों की दृष्टि में भारत के फलों में से सबसे पहला फल नारियल है। एक अरब यात्री अबुज़ैद कहता है—अरब के लोग नावों में भरकर नारियल ओमान लाते हैं और उससे बहुत धन कमाते हैं। नारियल के बाद नींबू और आम का नाम वे बड़े आश्चर्य से लेते हैं। इब्न हौकल कहता है कि—यहां सेव के बराबर एक फल होता है जिसे लेमूं कहते हैं। यह बहुत ही खट्टा होता है। यहां एक मेवा और होता है, जो शफ़्तालू की तरह होता है, उसका नाम अम्बीज (अर्थात् आम) है, जिसका स्वाद भी प्रायः शफ़्तालू के बराबर ही होता है। मसऊदी का कहना है—नारंगी और नींबू भी भारत की खास चीजें हैं। ये फल हिजरी तीसरी शताब्दी में भारत से अरब लाए गए थे। ये पहले ओमान में और फिर वहां से इराक और स्याम पहुंचे। यहां तक कि ये स्याम के समुद्र तट के नगरों और मिस्र में घर-घर फैल गए, लेकिन मसऊदी कहता है—'इन में वह भारत का सा स्वाद नहीं है।'

अरब और भारत के सम्बंध इतने मधुर हो गए थे। कि कुछ अरब नागरिक भारत में ही बस गए थे और वे भारतीय होने पर गर्व करने लगे थे। प्रसिद्ध विद्वान सैयद सुलेमान नदवी ने भारत में बस गए अरब के एक कवि अबू जिलअ सिंधी के एक

अरबी गीत का उद्धरण दिया है, जिस में वह भारत की दिल खोलकर प्रशंसा करता है। इसका भावार्थ इस प्रकार है:

"मेरे मित्रों ने नहीं माना और ऐसी अवस्था में यह बात ठीक नहीं थी, जबकि भारत की और युद्ध में भारत के तीर की प्रशंसा हो रही थी।"

"अपने प्राणों की सौगंध, यह वह भूमि है कि जब इसमें पानी बरसता है तब उससे उन लोगों के लिए दूध, मोती और लाल उगते हैं, जो श्रृगांर से रहित हैं।"

"इसकी मुख्य चीजों में कस्तूरी, कपूर, अम्बर, अगर और अनेक प्रकार के सुगंधित पदार्थ उन लोगों के लिए हैं जो मैले हों।"

"और भांति-भांति के इत्र, जायफल, सम्बुल, हाथी दांत, सागौन की लकड़ी, और चंदन हैं, और यहां बब्बर शेर, चीते, हाथी तथा हाथी के बच्चे होते हैं"

"यहां के पक्षियों में कुलंग, तोते, मोर और कबूतर हैं। वृक्षों में यहां नारियल, आबनूस और काली मिर्च के पेड़ हैं"।

"और हथियारों में तलवारें हैं, जिनको कभी सिकली की आवश्यकता नहीं होती, यहां ऐसे भाले हैं कि जब वे हिलें तब उनसे सेना की सेना हिल जाए।"

"तो क्या मूर्ख के सिवा कोई और भी ऐसा है जो भारत के इन गुणों को अस्वीकार कर सकता है।"

एक अन्य यात्री याकूबी है, जिसका देहांत 278 हि. में हुआ था। वह लिखता है कि भारतवर्ष के लोग बुद्धिमान और विचारशील हैं और इस दृष्टि से वे सब जातियों से बढ़कर हैं। गणित और फलित ज्योतिष में उनकी बातें सबसे खरी उतरती हैं। सिद्धांत उन्हीं की विचारशीलता का परिणाम है, जिससे यूनानियों और ईरानियों तक ने लाभ उठाया है। चिकित्सा शास्त्र में उनकी पुस्तक चरक और निदान हैं।"

अलबरूनी

अलबरूनी अरबी पंडितों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। ख्वारिज्म (खीवा) के रहने वाले इस प्रसिद्ध यात्री का असली नाम अबु-रेहान था। अलबरूनी का जन्म 973 ई. में हुआ था। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'किताबुल् हिन्द' में भारत का विस्तार से वर्णन किया है।

अलबरूनी को नई-नई बातें जानने का बहुत शौक था और इसी कारण उसने भारत की अनेक विद्याएं भी सीखी थीं। उसने भारत में प्रायः 12-13 वर्ष व्यतीत किए और यहां रह कर संस्कृत भाषा का व्यापक अध्ययन किया। उसने अरबों और ईरानियों को हिन्दुओं की विद्याओं का ज्ञान कराया और उन्हें यहां के नए-नए अन्वेषणों से भी परिचित कराया। उसने अरबी जानने वालों के लिए संस्कृत में और संस्कृत

जानने वालों के लिए अरबी में पुस्तकों का अनुवाद किया। भारत के धर्मों तथा साहित्य और विज्ञान की परम्पराओं के बारे में बताना उसका मुख्य उद्देश्य था। उसने भारत के सम्बंध में तीन प्रकार की पुस्तकें—अर्थात् एक अरबी से संस्कृत में, दूसरी संस्कृत से अरबी में और तीसरी भारतीय विद्याओं और सिद्धांतों की छानबीन और जांच-पड़ताल के सम्बंध में भी लिखी।

उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'किताबुले हिन्द' के अतिरिक्त ब्रह्मगुप्त की पुस्तक का अरबी में अनुवाद किया। सांख्य, पातंजलि और वराहमिहिर की लघु जातक पुस्तक का भी अरबी में अनुवाद किया। उसने भारत की अंक विद्या की पुस्तक, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण से सम्बंधित भारतीय पुस्तकों का भी अनुवाद किया। अलबरूनी ने अपनी पुस्तक 'कानूनमसूदी' में भारत के निम्नलिखित नगरों की जानकारी उनके अक्षांश और देशांतर सहित दी है: लोहारो (लाहौर), ओस्तान (अवस्थान, कश्मीर का एक नगर), नेपाल (भारत और तिब्बत के बीच एक रक्षित स्थान) वैहिन्द लाहौर, स्यालकोट, मुल्तान, सोमनाथ, खम्भात, उज्जैन, भड़ौच, कालिंजर, माहौरा (मथुरा), ग्वालियर, खजुराहो, अयोध्या, बनारस, तंजौर आदि। इसके अलावा, उसकी पुस्तक किताबुले हिन्द में ग्यारहवीं सदी के आरम्भिक काल के भारतीय साहित्य, विज्ञान तथा धर्म का विशद वर्णन मिलता है।

अलबरूनी लिखता है कि हिन्दुओं को अपनी विद्या पर बहुत अभिमान है और वे अपने सिवाय संसार की किसी दूसरी जाति को अपने से अधिक ज्ञानवान नहीं मानते। वह वैसे आगे यह भी लिखता है कि पुराने जमाने के हिन्दू पंडित ऐसे नहीं थे। वे दूसरी जातियों से भी लाभ उठाने में कमी नहीं करते थे। वह यह भी लिखता है कि जब उसने भारतीयों की भाषा सीख ली और उनकी विद्या से सम्बंधित योग्यता की कुछ त्रुटियां उन्हें दिखाने लगा तब लोग मुझे जादूगर और परोक्षदर्शी समझने लगे और मुझे 'विद्यासागर' कहने लगे।

अलबरूनी लिखता है कि भारत के उत्तर का भाग कभी गहरा समुद्र रहा था। आज के वैज्ञानिक भी इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि जहां आज हिमालय पर्वत है वहां कभी पहले अथाह-सागर था। यह एक ऐसा वैज्ञानिक तथ्य है, जिसका अलबरूनी से पहले किसी यात्री ने उल्लेख नहीं किया। अलबरूनी लिखता है कि भारत की नदियों में मगरमच्छ बहुत होते हैं। कई इलाकों में गेंडे भी पाए जाते हैं। एक विचित्र बात, जिसका अलबरूनी ने उल्लेख किया है वह है 'शराबा' नाम का एक विचित्र जानवर। उसने लिखा है कि कोंकण के मैदान में पाए जाने वाले इस पशु के चार पैरों के अलावा, पीठ पर चार पैर होते हैं। वह देखने में भैंसे जैसा, आकार में वह गेंडे से बड़ा था। वह बड़ा खूखांर जानवर था और वह अपने शिकार को पीठ के चारों पैरों के बीच फंसा लेता

था। लगता है कि अलबरूनी ने ऐसे पशु के बारे में लोगों से सुनकर ही लिखा हो। उसने चार आंखों वाले मृग का भी उल्लेख किया है। अलबरूनी का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था इसलिए उसने लिखा है कि शराबा पशु और चार आंखों वाले हिरणों के बारे में उसने केवल सुना है, आंखों से देखा नहीं।

अलबरूनी ने मूर्ति पूजा की प्रथा का उल्लेख किया है। उसका विचार था कि मूर्तियां निम्न श्रेणी के अनपढ़ और अज्ञानी लोगों के लिए थीं। अलबरूनी ने हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों को बड़े ध्यान से देखा और समझा। उसने लिखा है कि हिन्दू लोग तीर्थ-यात्रा के लिए वाराणसी, पुष्कर, थानेश्वर और मुल्तान आदि पवित्र स्थलों पर जाते हैं। वे कानून का सहारा लेने के बजाय शपथ या कठिन परीक्षाओं के द्वारा आपसी झगड़ों का निपटारा कर लेते हैं। अलबरूनी ने यहां की जाति-प्रथा का भी उल्लेख किया है। वह लिखता है कि विभिन्न जातियों के लोग अपने बाप-दादा के धंधों को ही अपनाते थे और इस प्रकार जाति का सम्बंध जन्म से हो गया था। हिन्दू लोग बांई ओर से दांई ओर लिखते थे। उत्तर भारत में लोगों द्वारा भोजपत्रों पर और दक्षिण भारत में ताड़-पत्रों पर लिखा जाता था। अलबरूनी ने रसायन द्वारा उपचार की कहानियों का भी उल्लेख किया है। कहते हैं कि इसके द्वारा बीमार को स्वस्थ और बूढ़े को जवान बनाया जा सकता था। वह लिखता है कि चिकित्सा-शास्त्र को नक्षत्र-विद्या के समान ही ज्ञान की उच्च शिक्षा माना जाता है। चरक, जिसके ग्रंथ का अरबी भाषा में अनुवाद हो चुका था, इस विषय का अच्छा लेखक माना जाता था। अलबरूनी ने उस समय भारत में प्रचलित माप-तोल के पैमानों का भी उल्लेख किया है। तोल के बाट अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग किस्म के होते थे।

अलबरूनी के उल्लेखों से पता चलता है कि भारतीय लोगों में संकीर्णता आ गई थी और यद्यपि वे धार्मिक दृष्टि से बड़े उदार थे, किंतु अंधविश्वासी भी थे। अब उन्होंने तर्क की कसौटी पर परखना लगभग बंद कर दिया था। लोग रीति-रिवाजों को अधिक मानने लगे थे और वे रूढ़िवादी होते जा रहे थे। इसके आलावा, वे अपनी विद्वता के बावजूद, जादू-टोने में विश्वास करते थे।

अरब के प्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक जाहिज ने जो बसरा का रहने वाला था और जिसका देहांत 255 हिजरी में हो गया था, लिखा है:—

भारत के लोग ज्योतिष और गणित में बहुत आगे हैं। उनकी एक विशेष हिन्दी लिपि है। आयुर्विज्ञान और चिकित्सा में उन्होंने बड़ी उन्नति की है। चिकित्सा के कुछ विचित्र भेद इन्हें ज्ञात हैं। विकट रोगों की दवाएं उन्हें ज्ञात हैं। प्रतिमाएं या स्टेचू बनाने, रंगों से चित्र बनाने और वास्तुकला में इन्हें प्रवीणता प्राप्त है। शतरंज के वे आविष्कर्त्ता हैं, जो बुद्धि और सोच का एक उत्तम खेल है। तलवारें बड़ी अच्छी बनाते हैं और उनके

चलाने की सब कलाएं जानते हैं। विष उतारने और दर्द दूर करने के मंत्र जानते हैं। इनकी संगीत विद्या भी श्रेष्ठ है। भाषण भी अच्छे करते हैं। चिकित्सा, दर्शन, साहित्य और नीति की शिक्षा भी उनके पास है। इन्हीं के यहां से कलेला-दमना नामक पुस्तक हमारे पास आई है। इनमें विचार और वीरता भी है और कई ऐसे गुण हैं जो चीनियों में भी नहीं हैं। उनमें स्वच्छता और पवित्रता के भी गुण हैं। फिर ज्योतिष और गणित विद्या भी उन्होंने निकाली है। इन्हीं के देश से बादशाहों के पास वह ऊद या अगर की लकड़ी आती है जिसकी कोई उपमा नहीं।

इब्न बतूता

इब्न बतूता मराकश या मोरक्को का रहने वाला था और इसने चौदहवीं शताब्दी में भारत की यात्रा की। वह 1325 ईसवी में मोरक्को से रवाना हुआ और उत्तरी अफ्रीका, कुस्तूनतूनिया, अरब, फारस, बुखारा और काबुल होते हुए 12 सितम्बर, 1333 ई० को सिंध पहुंचा। जब वह भारत पहुंचा तो उस समय भारत में मोहम्मद बिन तुगलक का शासन था।

भारत पहुंचने पर मोहम्मद बिन तुगलक ने इब्न बतूता को दिल्ली का काजी नियुक्त कर दिया। वह इस पद पर आठ वर्ष तक रहा। एक बार अप्रसन्न होकर मोहम्मद तुगलक ने उसे कारागार में डाल दिया। कुछ समय बाद उसे मुक्त करके 1342 ई० में राजदूत बनाकर चीन भेज दिया गया। चीन जाने के लिए वह खम्भात पहुंचा, जहां से वह कोरोमंडल गया। कोरोमंडल से चीन जाने के लिए जहाज मिलते थे। किन्तु जहाज टूट जाने के कारण उसे दिल्ली वापिस लौटना पड़ा। कुछ समय बाद वह भारत के लक्षद्वीप से होता हुआ मालद्वीप और श्रीलंका भी पहुंचा, जहां से लौटकर वह कुछ समय मदुरै में रहा। उसने बंगाल और कालीकट की भी यात्रा की, जहां से वह 1349 ई० में अपने देश मोरक्को को लौट गया।

इब्न बतूता एक विद्वान व्यक्ति था। उसने देश का चप्पा-चप्पा देखा था अपनी यात्राओं का विवरण 'किताबुल-रहला' में बहुत-ही सुंदर ढंग से किया है। उसने दक्षिण भारत के उस समय का वर्णन किया है जिस समय मुसलमानों ने उसे जीता नहीं था। उसने बंगाल की धन सम्पदा और शस्य-श्यामला भूमि का उल्लेख किया है। वह यहां प्रचलित सती प्रथा का भी उल्लेख करता है। उसने अलाउद्दीन को एक उत्तम सुल्तान बताया और मोहम्मद बिन तुगलक को अपने समय का आश्चर्य।

इब्न बतूता ने खम्भात, गावी, बैरम, गोगा, चंदापुर, हनोर, मालाबार, अबी सरूर, पाकनौर, मंगलौर, हेली, जरपट्टन, दहपट्टन, बुद्रपट्टन, पिंडारानी, कालीकट, कोलम, चालियात, लक्षद्वीप, कोरोमंडल, द्वार समुद्र, बीजानगर आदि

नगरों का विस्तार से वर्णन किया है।

मालाबार के सम्बंध में वह कहता है कि इस इलाके की सीमा चंदापुर से कोलम तक है, जो दो महीने का जहाजी मार्ग है। यह काली मिर्च वाला देश है। यहां छोटे-बड़े सब मिलाकर बारह हिन्दू राजा हैं। बड़े राजाओं के पास 50 हजार और छोटे राजाओं के पास 3-4 हजार सेना है। यद्यपि यहां सभी हिन्दू राज्य हैं, फिर भी इनमें मुसलमानों का बड़ा आदर है। यहां सभी यात्री, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, ठहरते और विश्राम करते हैं।

जरपट्टन के सम्बंध में वह लिखता है कि यहां के राजा के जहाज फारस, यमन और ओमान तक जाते हैं! मुसलमानों के प्रति बड़ी सहानुभूति का बर्ताव किया जाता है। जब कोई मुसलमान मर जाता है तो उसकी सम्पत्ति में से हिन्दू राजा कुछ नहीं लेता और वह मुसलमानों के सरदार के पास अमानत रहती है।

अरब के अन्य यात्री

सुलेमान सौदागार, इब्न हौकल, अलबरूनी और इब्न बतूता के अलावा, अरब के जिन यात्रियों ने भारत की यात्रा की और अपने वृतांत लिखे, उनमें से-अबूजैद हसन सैराफी, अबू दल्फ मुसइर बिन मुहलहिल यंबूई, बुजुर्ग बिन शहरयार, मसऊदी, इस्तखरी और बुशरी मुकद्दसी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अबुजैद हसन सैराफी ने लिखा है कि यहां पानी बहुत बरसता है और उसी से यहां कि खेती होती है। वह बौद्ध भिक्षुओं का भी उल्लेख करता है, जो नंगे बदन, सिर और शरीर के बाल बढ़ाए गले में मनुष्यों की खोपड़ियों की माला पहने देश-देश घूमते-फिरते रहते हैं। जब उनको भूख लगती है तब वे किसी के द्वार पर खड़े हो जाते हैं। सैराफी कहता है कि भारत में राजा लोग कानों में सोने के बाले पहनते हैं, जिनमें बड़े-बड़े बहुमूल्य मोती लगे हैं और गले में बहुमूल्य रत्नों की माला पहनते हैं। ये मोती और रत्न, उनकी सम्पत्ति और कोष हैं। सेनाओं के सेनापति तथा दूसरे अधिकारी भी अपने पदों और मर्यादा के अनुसार इसी प्रकार के गहने पहनते हैं। सैराफी को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यहां दो आदमी भी एक साथ मिलकर नहीं खाते। वे एक ही दस्तरखान पर भोजन करना उचित नहीं मानते। प्रत्येक व्यक्ति अपने पात्र में ही भोजन करता है। बचे हुए झूठे पदार्थ को फेंक दिया जाता है। वह यह भी लिखता है कि यहां के राजा प्रायः अपनी रानियों से पर्दा नहीं कराते और दरबार में जाने वाले सभी लोग उन्हें देख सकते हैं।

अरबों के अलावा, ईरान और तुर्किस्तान आदि देशों के यात्री भी यहां आए थे। इनमें से इब्न बतूता वास्तव में मोरक्को (अफ्रीका) का निवासी था।

अब्दुर्रज्जाक

यह 1443 ई० में तैमूरलंग के पुत्र और हिरात के सुल्तान का राजदूत बन कर भारत आया था। इसने विजय नगर साम्राज्य का आंखों देखा हाल लिखा है। वह दक्षिण की खुशहाली और विजय नगर साम्राज्य के ऐश्वर्य की दिल खोल कर प्रशंसा करता है। रज्जाक ने देवराय द्वितीय की राजधानी में 6 मास बिताए। वह लिखता है कि विजय नगर जैसा सुंदर नगर मैंने अभी तक अपनी आंखों से नहीं देखा। इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि संसार में ऐसा कोई दूसरा नगर हो सकता है।

इस नगर का निर्माण इस ढंग से हुआ है कि इसके सात दुर्ग हैं और इतनी ही दीवारें एक दूसरे को घेरे हुए हैं। पहले दुर्ग के चारों ओर पत्थर की दीवारें हैं, जो मानव कद के बराबर है और वे आधी जमीन के अंदर हैं। कोई भी घोड़ा या पैदल सिपाही इन्हें पार करके दुर्ग तक नहीं पहुंच सकता। सातवां दुर्ग उत्तर में है, जो राजा का महल है। बाहरी दुर्ग के उत्तर और दक्षिण के द्वारों के बीच का फासला दो फर्लांग है। इतना ही फासला पूर्व और पश्चिम के द्वारों के बीच है। पहले और दूसरे दुर्ग को पृथक करने वाले स्थान पर खेत, मकान और बाग हैं। बीच-बीच में बड़े-बड़े बाजार हैं।

वह लिखता है कि गुलाब हर जगह बिकते हैं, क्योंकि ये लोग गुलाब के बड़े शौकीन हैं और इसके बिना नहीं रह सकते। वे इसे भोजन की तरह आवश्यक मानते हैं। बाज़ार बहुमूल्य हीरों, मोतियों और जवाहरातों से सजे हैं। राजा के महल में पत्थरों को सुंदर ढंग से काटकर नहरें बनाई गई हैं, जिनमें जल बहता रहता है और फव्वारे चलते रहते हैं। वह इस वैभवशाली नगर की सुंदरता से बड़ा प्रभावित था।

अरब के यात्री जैसा कि पहले कहा गया है, मूल रूप से व्यापार के लिए ही भारत आते थे। इनकी यात्राओं से पता चलता है कि ये लोग अधिकतर समुद्री मार्ग से ही आते थे। इस प्रकार अरब देशों के साथ हमारे सम्बंध जलमार्ग से ही स्थापित हुए। अरब के यात्रियों ने भारत के तटीय प्रदेशों, विशेषकर दक्षिण भारत के क्षेत्रों, यहां की सम्पदा, पशुधन, वृक्षों, वनस्पति, खनिज पदार्थों, हीरे-मोती, जवाहरात और कीमती वस्त्रों के अलावा, यहां के रीति-रिवाजों, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, भाषा और साहित्य तथा नीति शास्त्रों का भी उल्लेख किया है।

भारत के ज्ञान से अरब लोग इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने संस्कृत ग्रंथों का अरबी में अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। हारूं रशीद ने चिकित्सा के लिए यहां से बैद्य बुलाए। फिर तो चिकित्सा, गणित, ज्योतिष, फलित ज्योतिष, साहित्य और नीति शास्त्र आदि के ग्रंथों का अरबी में अनुवाद होना शुरू हो गया। इसने भारत की कीर्ति और प्रसिद्धि को और भी उज्जवल कर दिया।

अरब वाले स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उन्होंने 1 से 9 तक के अंक लिखने का ढंग

हिन्दुओं से सीखा और कहा जाता है कि इसीलिए अरब वाले अंकों को 'हिन्दसा' और प्रणाली को 'हिसाब हिन्दी' कहते हैं। यह प्रणाली आगे चलकर अरबों से यूरोप की जातियों ने सीखी। अरबी भाषा में संस्कृत के अनेक शब्दों का अपने संशोधित रूप में समावेश हो गया। इस प्रकार अरबों के जरिये भारतीय ज्ञान का मार्ग यूरोप के देशों तक खुल गया।

मध्यकाल और बाद के यूरोपीय यात्री

वेनिस का साहसी यात्री मार्कोपोलो

मध्यकाल में यूरोप से भारत आने वाले यात्रियों में सबसे प्रमुख नाम मार्कोपोलो का है। वह वेनिस का निवासी था, जिसने 13वीं शताब्दी के अंत में भारत की यात्रा की थी। उसने अपनी पुस्तक 'इलमिलिओन' में तत्कालीन भारत की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर विशेष प्रकाश डाला है। एक स्थान पर वह लिखता है कि 'भारत के लोग दीर्घजीवी होते हैं, जिसका रहस्य उनका संयम और त्याग का जीवन तथा मित-आहारी होना है। वे कुछ विशेष प्रकार की जड़ी-बूटियों का सेवन भी करते हैं, उनकी पाचनक्रिया ठीक रहती है। शरीर स्वस्थ और दांत मजबूत होते हैं।' मार्कोपोलो भारत के योगियों की दीर्घायु को देखकर चकित रह जाता है। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ये लोग 150 वर्ष, और यहां तक की 200 वर्ष तक की आयु प्राप्त कर लेते हैं। योगी आयुर्विज्ञान में निपुण होते हैं और गंधक तथा पारे से बनी विशिष्ट औषधि का महीने में दो बार प्रयोग करते हैं। 'लियोनार्डो ओलस्वी' अपनी पुस्तक में मार्को के इस कथन का प्रयोग करता है कि 'नाविकों तथा मदिरा पान करने वालों के साक्ष्य को न्यायालय में स्वीकार नहीं किया जाता।' मार्कोपोलो भारत के दक्षिणी तट पर भी गया था। उसने दक्षिण भारत के जिन स्थानों का उल्लेख किया है, वे हैं:

1. मुरफिली (तेलंगाना)
2. सेंट थामस-लाइ (मद्रास)
3. माबार, सुंदर बड़ी राज्य (तंजावूर)
4. केल (तिरूनेलवेल्लि)
5. कुमारी (कन्या कुमारी)
6. कोइलम, त्रावणकोर
7. ऐली (कनानोर)
8. मलीबार (मालाबार)
9. थाना (बम्बई)
10. कनवेट (कैम्बे)
11. सेमनेट (सोमनाथ)
12. लार (गुजरात)
13. केसमाकोरन (मकरान)

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में लिखा है कि मार्कोपोलो चीन से वापस आते समय 1288 ई० और 1293 ई० में भारत रुका था। मार्कोपोलो 1275 ई० में चीन के प्रसिद्ध मंगोल सम्राट कुबले खान के दरबार में पहुंचा। उस समय मार्को 11 वर्ष का एक साहसी किशोर था। कुबले खान ने मार्को को अनेक ऊंचे पदों पर भी आसीन किया। वह चीन में 25 वर्ष तक रहा।

मार्कोपोलो ने भारत के समुद्री तट के अनेक स्थानों की यात्रा की। उस समय मालाबार पर चार राजाओं का राज्य था जिसमें से मुख्य राजा का नाम 'सदरहाडी' (सुंदर पड्या) था। मार्को ने मन्नार की खाड़ी से मोती निकालने के व्यवसाय का आंखों देखा वर्णन किया है। वह लिखता है कि यह व्यवसाय अप्रैल माह में आरम्भ होता है और मई माह के मध्य तक चलता है। राजा को केवल दसवां भाग ही दिया जाता है। इसके अतिरिक्त वे बड़े और सुंदर आकार की मुक्ताओं के लिए भारी धनराशि भी देते हैं। राजा अपने शरीर पर कीमती वेश-भूषा और बहुमूल्य आभूषण धारण करता है। समाज में उसका विशिष्ट स्थान होता है, उसके सभासदों में पूर्ण निष्ठावान और स्वामिभक्त व्यक्ति होते हैं, जो प्रत्येक उत्सव और यात्राओं में राजा के साथ-साथ रहते हैं। उनका साथ एहिलौकिक ही नहीं, वरन् पारलौकिक भी होता है। वे स्वेच्छा से ही अपने स्वामी की मृत्यु पर उसके साथ ही चिता में जलने को तैयार रहते हैं ताकि परलोक में भी वे राजा के साथ-साथ रहें। मृत्यु दण्ड के अपराधियों को अपने आराध्य देव की प्रतिमा के समक्ष 'हारा-केरी' करके आत्मघात करने की अनुमति दे दी जाती है। सती की प्रथा को किसी पर भी जबरन नहीं थोपा जाता।

देश की जलवायु घोड़ों के अनुकूल नहीं है। इन्हें भारी मूल्यों पर विदेशों से आयात किया जाता है। लोग घरों को गोबर से लीपते हैं। घरों में फर्नीचर नहीं होता। वे फर्श पर चटाइयां बिछाते हैं। इस क्षेत्र में चावल और तिल के अलावा दूसरा अन्न कम होता है। स्त्री और पुरुष दोनों ही दिन में दो बार प्रातः और सायं स्नान करते हैं और उससे पूर्व कुछ भी नहीं खाते। वे एक विशेष प्रकार के पात्र में जल पीते हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने ही पात्र का प्रयोग करता है, दूसरे का नहीं। जल पीते समय वे पात्र को मुख से नहीं छूते और उसे सिर से ऊपर ही रखते हैं और मुंह में जल आदि उंडेल लेते हैं। ज्योतिष और शकुन आदि में लोगों का विश्वास है। प्रत्येक शिशु के जन्म के बाद उसकी जन्म कुण्डली तैयार करवाई जाती है।

मंदिरों में देवी और देवताओं, दोनों की ही प्रतिमाएं होती हैं। वह लिखता है कि मंदिरों में देवदासियों का भी प्रचलन है। मार्कोपोलो सेंट थामस की शहादत से सम्बंधित कथा का भी उल्लेख करता है। उसने मेलापुर के निकट स्थित गिरजे का

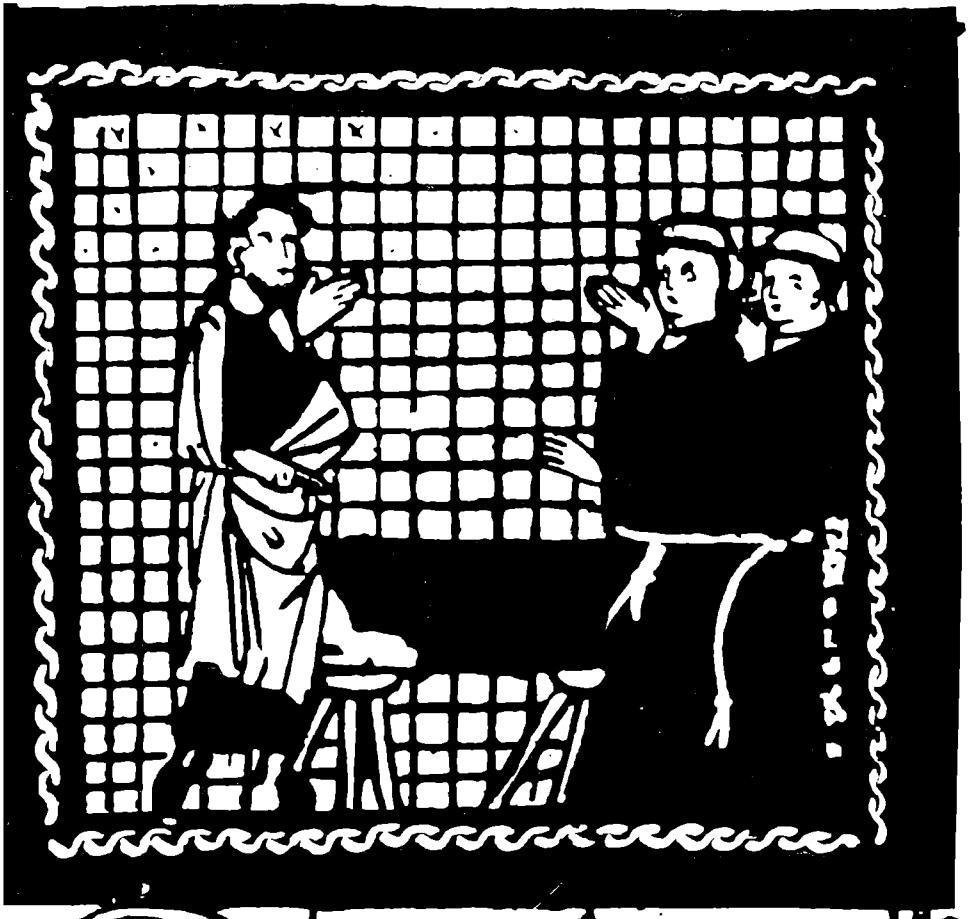

कुबले खान मार्कोपोलो बंधुओं को स्वर्ण आदेश पट्टियां दे रहे हैं।

वर्णन किया है। उस काल में कयालपट्टनम् मोतियों के व्यापार का एक प्रमुख बंदरगाह था। उसका कथन है कि 'यहां शांति का वातावरण है, जो विदेशी व्यापारियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।' राजा व्यापारियों का सम्मान करता है। पश्चिम विशेषकर आर्मोस चिश्ती, अदन तथा अरब से आने वाले व्यापारी यहां ठहरते हैं।

मार्कोपोलो लिखता है कि प्रायः सभी भारतीय और विशेषकर कयाल के लोग ताम्बूल के सेवन के आदी है और वे निरंतर पान की पत्तियां अपने मुंह में रखते हैं। उसे यह भी बताया गया है कि ताम्बूल का सेवन स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। तत्पश्चात् मार्को मुरफिली अथवा मौसुल राज्य की हीरे की खानों का वर्णन करता है जिससे उसका तात्पर्य काकतीय राज्य से है, क्योंकि मार्कोपोलो लिखता है कि उस समय यहां एक विवेकशील महिला अर्थात् रूद्रम्बा का राज्य था। रूद्रम्बा अपने न्याय और समानतापूर्ण शासन के लिए प्रसिद्ध थीं। वह कहता है कि तेलुगु प्रदेश में उत्तम प्रकार की मारकीन और बहुमूल्य वस्त्र तैयार होते हैं। उसने गुजरात के व्यापारियों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि वे संसार में सबसे सच्चे और ईमानदार व्यापारी हैं। मार्को ने हीरे प्राप्त करने का विस्तार से वर्णन किया है और कहा है कि भारत की सबसे बढ़िया मलमल का उत्पादन यहां होता है।

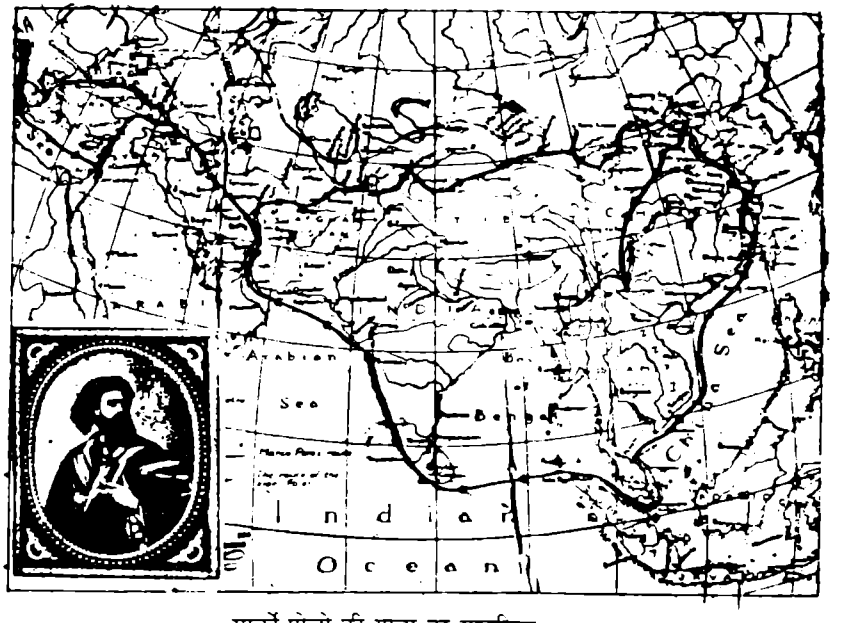

मार्को पोलो की यात्रा का मानचित्र

पश्चिमी तट पर बसे एक नगर कोलम (क्विलॉन) का भी मार्कोपोलो ने वर्णन किया है, जहां अनेक ईसाई और यहूदी अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं। यहां की विशेष उपज काली मिर्च है। उसके अलावा, अदरक और उत्तम प्रकार का नील भी पैदा होता है। इस नगर में चीन, अरब और निकटपूर्व से बड़ी संख्या में व्यापारी आते हैं। इस प्रदेश का मोर अन्य देशों के मोरों से सुंदर और बड़ा होता है। कन्याकुमारी के समीपवर्ती प्रदेश में कृषि की उपज अधिक नहीं होती वह प्रदेश वनों, जंगली पशुओं, विशेषकर मानव कद के वानरों और लम्बी पूंछ के बंदरों, रीछों, चीतों और तेंदुओं से भरा पड़ा है। तटवर्ती ऐली राज्य काली मिर्चों और मसालों के लिए प्रसिद्ध है। वह कहता है कि मालाबार और गुजरात तटों पर अनेक जलदस्यु रहते हैं, जो रास्ते में जाने वाले जहाजों को लूट लेते हैं। वे पांच-पांच मील के फासले पर लंगर डाले रहते हैं। लक्षद्वीप के मिनीकॉय टापू पर महिलाओं के शासन और प्रभुत्व को देखकर उसने इसे 'स्त्री द्वीप' की संज्ञा दी थी। गुजरात से भारी मात्रा में चमड़े का निर्यात होता है। गुजरात की कशीदाकारी विश्वभर में प्रसिद्ध है। सोने और चांदी जड़े तोषक तकिए और गिलाफ यहां से बाहर भेजे जाते हैं। इन पर सोने के तारों से पशु-पक्षियों के चित्र बनाए जाते हैं। अरब और चीन के जहाजों का यहां जमघट-सा रहता है। बारीक मलमल के तार मकड़ी के जालों जैसे लगते हैं, जो भारत के पूर्वी तट पर तैयार किए जाते हैं।

अन्य यूरोपीय यात्री

प्राचीन काल में यूनान के मैगस्थनीज से यूरोप के यात्रियों का जो सिलसिला शुरू हुआ था वह कुछ अंतराल के बाद मुगलकाल में फिर से आरम्भ हो गया। इस बीच वेनिस के प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने अवश्य भारत की यात्रा की थी जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

वास्कोडिगामा 1498 ई० में केप आफ गुड होप का चक्कर लगाता हुआ कालीकट पहुंचा और इससे यूरोप के देशों के लिए भारत का मार्ग खुल गया। पुर्तगालियों के बाद डच, डेन, फ्रेंच और अंग्रेज लोग व्यापार की दृष्टि से यहां आने लगे और उनमें भारत के शोषण की होड़ लग गई। सन् 1600 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना हुई। सन् 1608 ई० में कप्तान हाकिंस जहांगीर के दरबार में इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम का पत्र लेकर आया और उसने सूरत में कोठी बनाने की आज्ञा मांगी। इस काल में यूरोप के अनेक देशों के यात्री यहां आए और उन्होंने भारत की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति पर विशद प्रकाश डाला है।

वास्को डी गामा और कालिकट का जमोरिन

रेल्फ फिच

रेल्फ फिच एक अंग्रेज यात्री था जो अकबर के शासन काल में भारत आया था। उसने 1585 ई० में आगरा और फतेहपुर सीकरी की यात्रा की थी। वह इन नगरों के सम्बंध में लिखता है कि 'ये नगर लंदन से भी बड़े नगर हैं, जिनकी जनसंख्या बहुत बड़ी है। इन नगरों में ईरान और अन्य देशों के व्यापारी रेशमी कपड़ों, बहुमूल्य हीरे जवाहरात के व्यापार के लिए आते हैं।' फिच आगरा और बंगाल के बीच व्यापार के लिए चलने वाली नावों का भी उल्लेख करता है। उसने स्वयं भी 180 नावों के एक बेड़े में आगरे से बंगाल की यात्रा की थी जिसमें नमक, अफीम, शीशा और दरियां आदि लदी हुई थीं।

इससे पता चलता है कि अकबर के शासन काल में उत्तरी भारत में अधिकांश व्यापार नदियों द्वारा होता था। वर्तमान काल में भी गंगा जैसी बड़ी नदियों को यातायात के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

इसी काल में भारत में आए मोनसरेट और जेरोम जेवियर्स जैसे ईसाई पादरियों ने भी अकबर की महानता और उसके सद्व्यवहार का उल्लेख किया है।

जे.बी. टेवरनियर (1641-68)

टेवरनियर एक फ्रंसीसी यात्री था जो 1641 ई० में भारत आया था। उसने [illegible] आगरा, इंदौर, ग्वालियर, बड़ौदा, अहमदाबाद, बनारस, पटना, ढाका और [illegible] आदि की यात्रा की थी। वह लिखता है कि भारत में यात्रा अधिकतर बैलगाड़ियों और पालकियों द्वारा होती हैं। पालकी को छह व्यक्ति उठाते हैं, जिन्हें चार रुपये महीना [illegible] वेतन दिया जाता है। उसने मुगल शासन का आंखों देखा हाल प्रस्तुत किया है शाहजहां के राजसिंहासन, तख्ते ताऊस के सम्बंध में उसने सब से प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की है। वह लिखता है कि 'मुख्य सिंहासन जो दरबार के मुख्य भवन में स्थित है, वह हमारे शिविर की चारपाइयों से आकार और प्रकार में मिलता-जुलता है अर्थात् यह लगभग छह फुट लम्बा और चार फुट चौड़ा है। चारों पायों के ऊपर चार सलाखें लगी हुई हैं, जो 20 से लेकर 25 इंच तक ऊंची है, ये सिंहासन के आधार को सहारा दिए हुए है। इन सलाखों के ऊपर 12 स्तम्भ हैं जो इसकी छतरी को तीन ओर से सम्भाले हुए हैं। पायों और सलाखों के ऊपर 18 इंच में बड़े सोने के पत्र चढ़े हुए हैं और उन पर अनेक हीरे, माणिक और पन्ने जड़े हुए हैं।

'मैंने इस सिंहासन के बड़े-बड़े माणिकों को गिना है, वे 108 के लगभग हैं। इनमें सबसे छोटे का भार 100 कैरेट है किंतु कुछ ऐसे भी हैं, जो 200 कैरेट हैं या उससे बड़े दिखाई देते हैं।'

'छतरी का अंदर का भाग हीरों और मोतियों से ढका हुआ है, जिसके चारों ओर मोतियों की झालर लगी हुई है। छतरी के ऊपर, जो एक चौकोर गुम्बद की शक्ल की है, एक मोर स्थित है जिसकी पूंछ ऊपर को उठी हुई है। पूंछ नील मणि तथा अन्य रंगों के पत्थरों से बनी है। मोर का शरीर सोने का है जिसमें बहुमूल्य पत्थर लगे हुए हैं। उसकी छाती के सामने एक बड़ा माणिक लगा है जिसे ऊपर भाले के आकार का एक लगभग 50 कैरेट भार का मोती है, जो कुछ-कुछ पीले जल जैसा है।

बर्नियर

यूरोपीय यात्रियों में सबसे प्रसिद्ध फ्रांस का एक चिकित्सक बर्नियर था। वह शाहजहां के शासन काल के अंतिम दिनों में यहां आया था और 9 वर्ष (1658 से 1667) तक भारत में रहा। उसने इस देश का व्यापक रूप से भ्रमण किया था। वह विभिन्न क्षेत्रों में गया। उसने देश की आर्थिक और राजनीतिक स्थानों का बड़ा ही विशद वर्णन किया है। उसने मुगल शासन तंत्र का बड़ी गहराई से अध्ययन किया था। एक स्थान पर वह लिखता है कि 'महान मुगल हिन्दुस्तान में एक विदेशी है। वह अपने आपको शत्रुओं से घिरा पाता है। प्रांतीय सूबेदार बड़े अत्याचारी हैं, जिन्हें असीम अधिकार

प्राप्त हैं।' कुछ सूबेदारों की निर्दयता का वर्णन करते हुए कहता है कि कभी-कभी किसानों और शिल्पकारों को जीवन की मूल आवश्यकताओं से भी वंचित कर दिया जाता है। मुगल सेना में उचित अनुशासन की कमी है। बर्नियर ने न्याय और प्रशासन में आई कमियों का भी उल्लेख किया है। यह उसका निजी दृष्टिकोण भी हो सकता है।

उसने अनेक कारखानों को भी देखा था जहां हजारों दस्तकार काम करते थे। कशीदाकारी, जरी का काम, सोने-चांदी के जेवरों, रेशमी और सूती कपड़ों का काम बड़े जोरों पर था। वह बंगाल की उपजाऊ भूमि और देश की वाणिज्यिक स्थिति की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। वह कहता है कि बंगाल सूती वस्त्रों और रेशमी वस्तुओं की पूर्ति सारे मुगल साम्राज्य के लिए ही नहीं बल्कि पड़ौसी देशों और यूरोप तक के लिए भी करता है।

यूरोप से आने वाले इन असंख्य यात्रियों का विवरण इस पुस्तक में देना सम्भव नहीं है, फिर भी इनमें से कुछ प्रसिद्ध यात्रियों द्वारा व्यक्त विचारों को संक्षिप्त में यहां प्रस्तुत किया जाता है। हाकिंस ने जहांगीर के कठोर व्यवहार का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि जहांगीर कभी-कभी बहुत कठोर और निर्दयतापूर्ण दंड दे देता था और मनुष्य तथा जानवरों के बीच लड़ाई के खेल देखना पसंद करता था।

हाकिंस के बाद सर टामस रो जहांगीर के दरबार में आया। उसने भी जहांगीर के दरबार का वर्णन किया है। वह लिखता है कि दरबार के ऊंचे अधिकारी भ्रष्ट और सिद्धांतहीन हैं। उनके वेतन अनावश्यक रूप से बहुत अधिक हैं। जहांगीर मदिरापान करता है, किन्तु दयालु और न्यायप्रिय है। राज्य में ललित कलाएं अपने पूरे विकास पर हैं। टामस रो ने एक इंगलिश चित्र जहांगीर को पेश किया। जहांगीर ने तत्काल एक भारतीय कलाकार से उसकी प्रति तैयार करा दी। यह नकल इतनी -हू-ब-हू थी कि रो को असली और नकली में पहचान करने में बड़ी कठिनाई पेश आई।

मुगल काल में मनूकी नाम का इटली का एक यात्री भी आया था और उसने शाहजहां के शासन के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं।

इन यात्रियों के अतिरिक्त जहांगीर के शासन काल में एक अंग्रेज यात्री टेरी भी सर टामस रो के साथ आया और 1615 से 1618 तक रहा।

पीट्रो-डेला-बेले नाम का इटली का एक यात्री 1623 ई० में सूरत आया था। वह लिखता है कि जहांगीर मुसलमान होते हुए भी ईसाइयों, हिन्दुओं तथा अन्य धर्म के लोगों का आदर करता है। बच्चे जमीन पर लिखकर अंकगणित के पहाड़े याद करते हैं।

एक अन्य यात्री रफेल डेनी बियोय जार्जिया (रूस) का रहने वाला था। वह 15 मार्च, 1795 ई० को भारत के लिए रवाना हुआ और मद्रास, कलकत्ता, मेरठ, नूरपुर

होता हुआ कश्मीर पहुंचा। कश्मीरियों के सम्बंध में वह लिखता है कि जब कोई चोर पहली बार पकड़ा जाता है तो उसका दायां हाथ काट दिया जाता है और दूसरी बार पकड़े जाने पर उसे ऊंट पर बैठा कर बाजार में घुमाया जाता है। कश्मीर बहुत ही सुंदर और चित्ताकर्षक क्षेत्र है। यहां सुंदर झीलें और चश्में हैं। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य देखते ही बनता है।

यूरोपीय यात्रियों की इस अनवरत श्रृंखला में अनेक नाम हैं, जिनमें एम.डी. तेवेहोट (फ्रांस) 1660 ई०, जान फ्रायर (इंगलैंड) 1678 ई०, केप्टेन हैमैल्टन (स्काटलैंड) 1688 ई०, कासर्टन निबुहर (रोम), 1608 ई० टाम कोरियाट (इंग्लैंड) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हो जाने के बाद तो यहां लगातार ब्रिटिश नागरिक यात्री, शासक, धर्मप्रचारक और सैनिक के रूप में आते रहे। इन्होंने अन्य कार्यों के साथ-साथ भारतीय समाज का चित्रण भी अपने संस्मरणों में किया है। यहां इनका विवरण देना सम्भव नहीं होगा।

उपसंहार

विदेशी यात्रियों द्वारा प्रस्तुत इन विवरणों से भारत की जो तसवीर सामने आती है, उसकी प्रमुख विशेषता यह है कि भारत सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सदा एक रहा है, राजनैतिक दृष्टि से भले ही यहां विभिन्न शासन प्रणालियां रही हों। दूसरे यहां संसार के सभी धर्मों के मानने वालों के साथ सौहार्द पूर्ण व्यवहार रहा है। यहां के शासकों और निवासियों ने विदेशी नागरिकों और अपने से भिन्न धर्मावलम्बियों के साथ आदर और प्रेम का व्यवहार किया है। यही कारण है कि भारत अतीत से ही संसार के लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। हमारे लोकतंत्र और सर्वधर्म-समभाव के स्वरूप की यही गहरी बुनियादें हैं। इन्हीं परम्पराओं के बल पर हजारों वर्षों से हमारा देश अडिग खड़ा है।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार